अविपुंज

2020–2021

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान

अविकानगर – 304 501 (राजस्थान)

अविपुंज 202–21

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर
हिंदी पखवाड़ा समारोह
14-28 सितम्बर, 2021
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर
हिंदी पखवाड़ा समारोह
14-28 सितम्बर, 2021
ICAR
CSWRI
AVIKANAGAR

अविपुंज

हिंदी पत्रिका

चौदहवां अंक

2020-21

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान
अविकानगर (वाया-जयपुर) राजस्थान-३०४५०१

संरक्षक एवं प्रकाशक
डॉ. अरूण कुमार तोमर

परामर्श मण्डल
डॉ. सीताराम शर्मा, प्रभारी, विभागाध्यक्ष, पशु स्वास्थ्य विभाग
डॉ. आर.सी. शर्मा, प्रभारी, विभागाध्यक्ष, एजीबी विभाग
सुरेश कुमार, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी

मुख्य सम्पादक
डॉ. राघवेन्द्र सिंह, विभागाध्यक्ष, ए.पी. एवं बी. प्रभाग

सम्पादक
नवीन कुमार यादव, सहायक निदेशक (रा.भा.)

तकनीकी संपादक मण्डल
डॉ. आर.एस. भट्ट-प्रधान वैज्ञानिक, डॉ. अजय कुमार-प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. राजीव कुमार-वरिष्ठ वैज्ञानिक, डॉ. लीला राम गुर्जर-वैज्ञानिक
डॉ. सत्यवीर सिंह डांगी-वैज्ञानिक, डॉ. दुष्यंत कुमार-वैज्ञानिक

छायाचित्र एवं प्रारूप संपादन
डॉ. एस.सी. शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक

संपर्क सूत्र
नवीन कुमार यादव
सहायक निदेशक (रा.भा.)

केवल विभागीय उपयोग हेतु

नोट : पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं, संस्थान अथवा संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं।

निदेशक की कलम से ...

राजकीय कार्यालयों में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिये पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन भी एक प्रमुख दायित्व है। 'अविपुंज' अर्थात् भेड़ों का समूह। संस्थान की हिन्दी पत्रिका 'अविपुंज' हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के प्रोत्साहन तथा प्रचार–प्रसार को समर्पित वार्षिक पत्रिका है जो संस्थान में आयोजित हिंदी संबंधी गतिविधियों को प्रतिबिंबित करती है।

आपको यह अवगत कराते हुये मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि वर्ष 2022 में संस्थान स्थापना के 60 वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। वर्ष 1962 में स्थापना से लेकर पिछले 6 दशकों में संस्थान ने भेड़ एवं ऊन अनुसंधान के क्षेत्र में अनगिनत उपलब्धियां प्राप्त की हैं।

नवीनतम पशुगणना के अनुसार भेड़ की आबादी 74.26 मिलियन हो गयी है, जिससे 678.0 मिलियन किग्रा मांस, 40.4 मिलियन किग्रा ऊन एवं 6 मिलियन लोगों को रोजगार मिल रहा है। संस्थान देश में मांस की कमी को पूरा करने हेतु सघन उत्पादन के तहत कम भेड़ संख्या से अधिक उत्पादन, जुड़वां/त्रियक मैमनों की प्राप्ति हेतु फेक बी जीन के अनुक्रमण, आहार रूपांतरण दक्षता, जैविक खाद, हस्तशिल्प तथा रजाई आदि में मोटी ऊन के विविध उपयोग पर निरन्तर कार्य कर रहा है। भेड़ पालन पर किसानों तथा पशुपालकों को विस्तृत स्तर पर प्रशिक्षण, प्रदर्शन एवं कौशल विकास के माध्यम से सहयोग कर रहा है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न परियोजनाओं यथा अनुसूचित जाति उपयोजना, अनुसूचित जनजाति उपयोजना, फार्मर फर्स्ट, मेरा गांव मेरा गौरव, सांसद आदर्श ग्राम योजना आदि के माध्यम से विभिन्न वर्गों को सबल बनाने हेतु प्रयासरत है।

अविपुंज के 14 वें अंक के प्रकाशन के लिये मैं पत्रिका के संपादक, संपादक मंडल, रचनाकारों/लेखकों तथा सुधी पाठकों को शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ।

(डॉ. अरूण कुमार तोमर)

प्राक्कथन

अविपुंज का 14 वां अंक आपके हाथों में सौंपते हुये प्रसन्नता हो रही है। अविपुंज निरन्तर वैज्ञानिक हिंदी पत्रिका के रूप में स्थापित हो रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के 7 दशक से अधिक बीत जाने पर भी क्या हिंदी वैज्ञानिक लेखन का चलन अपेक्षानुरूप बढ़ा है, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन व अनुसंधानों की जानकारी आमजन तक पहुंचे, यही अविपुंज पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है। देश में वैज्ञानिक उपलब्धियों को ऐसी पत्रिकाओं के माध्यम से आमजन तक सरलता से पहुँचाया जा सकता है। इसलिये वैज्ञानिक पत्रकारिता को प्रोत्साहन दिये जाने की आवश्यकता है।

पत्रिका अविपुंज के प्रकाशन के लिये संस्थान के निदेशक डॉ. अरूण कुमार तोमर के विशेष आभारी हैं जिन्होंने निरन्तर हिन्दी के प्रति अपनी रूचि को रखते हुये इस अंक के प्रकाशन हेतु प्रोत्साहित किया। इस अंक के लिये उपयोगी लेखन के लिये सभी वैज्ञानिक, अधिकारियों व कर्मचारियों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि गत अंकों की भांति इस अंक के पाठक भी अपने सुझाव व स्नेह देकर इसको और अधिक ज्ञानवर्धक व अमूल्य बनाने में सहायक होंगे।

(डॉ. राघवेन्द्र सिंह)

संपादकीय

हिंदी में वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन के लिये प्रगतिपरक संस्कृति तथा ज्ञान–विज्ञान को सहज एवं गहन दोनों रूपों में अभिव्यक्त करने एवं संप्रेषित करने की संपूर्ण क्षमता विधमान है। यह सत्य है कि हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली समुचित मात्रा में उपलब्ध है परन्तु फिर भी वैज्ञानिक विषयों पर हिंदी में लेखन अत्यल्प और अपर्याप्त है।

उच्च शिक्षा में माध्यम परिवर्तन न होने के कारण अभी भी विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की पहुँच जनसामान्य तक नहीं हो पायी है। आज आवश्यकता है कि शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को अपनाया जाये तथा वैज्ञानिकों को हिंदी में बोलने तथा लिखने के लिये प्रेरित किया जाये।

अविपुंज लोकप्रिय लेखों तथा रोचक जानकारी द्वारा राजभाषा हिंदी को बढ़ावा देने में योगदान करती रही है। विभिन्न अनुसंधान संस्थानों की हिंदी पत्रिकाओं के लोकप्रिय लेखों को आमजन की भाषा में प्रसारित करने से ही अनुसंधान का फल लक्षित समूह तक पहुँच पायेगा। संस्थान की गृह पत्रिका 'अविपुंज' बहुपयोगी जानकारियों की वाहक बनने में पूरी तरह से सफल रही है।

अविपुंज का अनवरत प्रकाशन होता रहे एवं यह इसी तरह उपयोगी बनी रहे, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ.....

.

(नवीन कुमार यादव)

विषय सूची

क्र.सं.	आलेख एवं लेखक का नाम	पृष्ठ सं.
1.	बदलते भारतीय परिवेश में अविकानगर के नवीन आयाम अरुण कुमार एवं राघवेन्द्र सिंह	1
2.	भेड़–बकरियों की तुलनात्मक विशेषताएँ एवं पारिस्थितिकी संतुलन अरूण कुमार, राजीव कुमार, सिद्वार्थ मिश्रा व आर सी शर्मा	8
3.	भेड़ पालन–कुछ महत्वपूर्ण जानकारी पिल्लू मीना, राजीव कुमार, ओ.पी कोली एवं अरुण कुमार तोमर	15
4.	भेड़ों को होने वाली आम बीमारियाँ एवं उसका बचाव राघवेन्द्र सिंह, अर्पिता महापात्रा एवं विजय कुमार	18
5.	उच्च गुणवत्ता चारा बीज : चारा उत्पादन हेतु एक महत्वपूर्ण निर्धारक सुरेश चन्द्र शर्मा, रंगलाल मीणा, आर्तबन्धु साहू व रमेश बाबू शर्मा	22
6.	हाइब्रिड नेपियर घास : कम लागत पर वर्षभर हरा चारा उत्पादन का साधन सुरेश चन्द्र शर्मा, बनवारी लाल, लीला राम गुर्जर व रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	26
7	भेड़ का दूध : बदलते परिवेश में आमदनी का नया स्त्रोत राघवेन्द्र सिंह, अर्पिता महापात्रा एवं विजय कुमार	30
8.	शुष्क क्षेत्रों में हरे चारे का विकल्प : चुकंदर घास रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, आर्तबन्धु साहू, सुरेश चन्द्र शर्मा, बनवारी लाल एवं तरूण जैन	32
9.	चरागाह हेतु गुणवत्तायुक्त घास एवं फलीदार चारा रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, सुरेश चन्द्र शर्मा, आर्तबन्धु साहू, बनवारी लाल एवं तरूण जैन	35
10.	आपदा काल में पशु प्रबन्धन राज कुमार, बनवारी लाल, रंगलाल मीणा, जे. पांडयान, नरेश प्रसाद1, इन्दु देवी एवं अरुण कुमार तोमर	41
11.	मृदा की घटती उर्वरताः कारण एवं प्रबंधन रामेश्वर लाल मंडीवाल, राजकुमार, एस. सी. शर्मा, बलवीर सिंह साहू, ओमप्रकाश महला (वाई. पी. I)	47
12.	राजस्थान की अर्थव्यवस्था के लिए बढ़ता तापमान, सिकुड़ते चरागाह, जलवायु परिवर्तन, गंभीर खतरा–एक विवेचना रमेश बाबू शर्मा, सुरेश चन्द्र शर्मा एवं भारती शर्मा	52
13.	जलवायु परिवर्तन के कारण जैव विविधता पर होने वाली समस्यायें और उनका निराकरण महेश चन्द मीना, सुरेन्द्र कुमार सांख्यान, रणधीर सिंह भट्ट, तरूण कुमार जैन एवं आर्तबन्धु साहू	56
14.	ग्रामीण समुदाय की पोषण सुरक्षा एवं आमदनी में बकरी पालन का योगदान बरखा शर्मा, डी.आर.पचौरी, रामधन घसवा, राजकुमार, एस एस मिश्रा,	59

क्र.सं.	आलेख एवं लेखक का नाम	पृष्ठ सं.
15.	अंगोरा खरगोश के रेशों से निर्मित शॉल – एक सफल प्रयास अजय कुमार, डी.बी. शाक्यवार, ए. एस. एम. राजा', विनोद विष्णु कदम एवं एन. शणमुगम	65
16.	ऊनी कपड़े के आकार संकुचन व अन्य गुणों पर एंजाइम उपचारण का प्रभाव विनोद कदम, सुषमा रानी, राजेंद्र सिंह राजावत, एन एल मीना, सिको जोस, डी बी शाक्यवार, एन शण्मुगम एवं अजय कुमार	73
17.	कृषि व्यवसाय उद्भवन केन्द्र – स्व–रोजगारपरक योजना विनोद कदम, योगेश गाडेकर, डी.बी. शाक्यवार, आर्तबन्धु साहू, अरूण कुमार, एफ.ए. खान, देवेन्द्र कुमार, ए.एस. राजेन्द्रन, श्याम सिंह एवं राघवेन्द्र सिंह	80
18.	पशु बीमा : किसानों के सवाल–जवाब राज कुमार, रंग लाल मीना, इन्दु देवी, गोपाल गोवाने, रामेश्वर लाल मंडिवाल, रामधन गसवा एवं बलवीर सिंह साहू	84
19.	भेड़–बकरी पालकों के लिए किसान मोबाईल सन्देश सेवा एल.आर. गुर्जर, रंगलाल मीणा, बनवारी लाल एवं एस.सी. शर्मा	88
20.	भेड़ पालन को बढ़ावा देने में प्रसार तकनीकियों का महत्व एल.आर. गुर्जर, राजकुमार, एवं एस.सी. शर्मा	91
21	अनुसूचित जातिय उपयोजना : गरीबों की आजीविका सुदृढ़ करने की एक पहल एल.आर. गुर्जर, डी.बी. शाक्यावार, अजय कुमार, एम.सी. मीना एवं राजेन्द्र कुमार माछुपुरिया	95
22.	अनुसूचित जनजाति उपयोजना के अंतर्गत बकरी एवं खरगोश पालन ईकाई का वितरण अमर सिंह मीना, रतन लाल बैरवा, लीला राम गुर्जर, दुष्यंत कुमार शर्मा, गणेश सोनावणे एवं अरुण कुमार	101
23.	कोविड–19 से बचाव हेतु ''फेस मास्क'' बनाने पर प्रशिक्षण डी0 बी0 शाक्यवार, परवेश कुमार एवं राजेन्द्र कुमार माछुपूरिया	104
24.	स्वच्छ और सुरक्षित दूध उत्पादन का महत्व बरखा शर्मा, रामधन घसवा, राजकुमार	106
25.	स्वच्छ मांस उत्पादन वाई पी गाडेकर, अरविन्द सोनी एवं ए के शिंदे	110
26.	संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियां नवीन कुमार यादव	115

बदलते भारतीय परिवेश में अविकानगर के नवीन आयाम

अरुण कुमार एवं राघवेन्द्र सिंह

विगत कुछ दिनों से पूरी मानव सभ्यता कोरोना विषाणु जनित एक महामारी की त्रासदी झेल रही हैं। इस महामारी ने शहरी क्षेत्रों को ज्यादा प्रभावित किया है तथा उद्योग–धंधा, विभिन्न कारखानों एवं अन्य असंगठित क्षेत्रों में काम बंद करना पड़ा है। इन क्षेत्रों में काम करने वालें लाखों श्रमिकों का रोजगार छिन गया है। ये श्रमिक मुख्यतः सुदूर ग्रामीण इलाकों के रहने वाले हैं। शहरी क्षेत्रों में व्यवसाय अस्थायी रूप से बंद हो जाने के कारण इन्हें बहुत ही मुश्किल हालात का सामना करना पड़ रहा है तथा मजबूरन हजारों किलो मीटर दूर अपने पैतृक गांव जाना पड़ा है। अचानक अपने–अपने गांवों में आने वाले अधिकत्तर श्रमिकों के पास अभी कोई रोजगार का साधन नहीं है। गांवों में बड़े–बड़े कल कारखाने लगाना मुश्किल है एवं उद्योग धंधों में लाखों स्थानीय श्रमिकों को काम दे पाना दीर्घावधि में ही संभव हो सकेगा। ज्यादात्तर भारतीय ग्रामीण इलाका खेती एवं पशुपालन पर निर्भर करता है। ऐसे में अचानक कृषि पर अधिक दबाव आ गया है। खेती जनित आय जोत एवं अन्य सुविधाओं जैसे कि सिंचाई व्यवस्था, मौसम इत्यादि पर निर्भर करती है। भारत वर्ष में प्रति व्यक्ति जोत बहुत ही कम है। जिससे बहुत अधिक लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसके साथ–साथ कोरोना महामारी के कारण पलायन कर अपने–अपने पैतृक गांवों में आये अधिकांश श्रमिकगण भूमिहीन हैं अथवा लघु भूमि वाले हैं। अतः ऐसे समय में पशुपालन एक उत्तम आय का साधन हो सकता है। बड़े पशुओं जैसे कि गाय, भैंस पालने आदि के लिए अधिक पूंजी एवं जगह की आवश्यकता होती है इसके साथ इसमें अधिक नुकसान की भी संभावना बनी रहती है। ऐसे समय में भूमिहीन एवं कम जोत वाले श्रमिकगण भेड़, बकरी एवं खरगोश पालन कर आत्मनिर्भर बन सकते हैं। इन छोटे पशुओं से प्राप्त मांस, दूध, ऊन आदि की बिक्री से बहुत ही अल्प समय में आय ली जा सकती हैं। इन छोटे पशुओं के लालन पालन में अधिक पूंजी की आवश्यकता भी नहीं होती है। भेड़, बकरी, एवं खरगोश पालन से एक निश्चित राशि साल भर प्राप्त की जा सकती है। जिससे पलायन कर आये श्रमिक अपना एवं अपने परिवार का अच्छे से लालन पालन कर सकते है। हमारे देश में भेड़, बकरी एवं खरगोश की विभिन्न प्रजातियां पाई जाती हैं जो कि देश के विभिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल पाली जा सकती है।

अभी हमारे देश में भेड़ की 44 तथा बकरी की 34 पंजीकृत नस्लें हैं, जो कि जम्मू और कश्मीर से केरल तथा

अरूणाचल प्रदेश से गुजरात तक फैली हैं। भेड़–बकरी पालन शुरू से ही अन्य व्यवसायों की अपेक्षा कम जोखिम भरा रहा है। एक वर्ष से कम समय में ही भेड़–बकरी पालन एक अच्छी आय का साधन बन सकता है तथा इसमें खर्चा भी कम आता है।

हमारे देश में लगभग 743 लाख भेड़ तथा 1489 लाख बकरी हैं, जो कि विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में पाई जाती हैं। सही मायने में भेड़–बकरी एक बहुउपयोगी जानवर हैं, जिनसे मांस, दूध, ऊन, खाल, मेंगनी आदि प्राप्त होते हैं। भेड–बकरी पालन एक चलता फिरता ए.टी.एम. है, जिससे छोटी–छोटी जरूरतों के लिए कभी भी पैसा जोड़ा जा सकता है। भेड़–बकरी पालन में अधिक आमदनी मांस से होती है। वर्तमान कोरोना संकट के समय भेड़–बकरी पालन एक संकट मोचक वरदान सिद्ध हो सकता है, जो पशुपालकों की निश्चित आमदनी का साधन होने के साथ–साथ पारिवारिक आवश्यकताओं हेतु दूध एवं माँस की भी पूर्ति करेगा व पूरे वर्ष भर रोजगार के अवसर भी प्रदान करने में सहायक होगा जिससे श्रमिकगण आत्मर्निभर भारत का हिस्सा बन सकते हैं।

भेड़–बकरी ऐसा लघु रोमान्थी पशु है जो कि चराई के साथ स्टाल फीड़िंग पर रखी जा सकती है तथा पैदा हुए मेमनों को मांस के लिए बाजार में बेचा जा सकता है। भेड मुख्यतः मांस एवं ऊन के लिए पाली जाती है तथा बकरी मांस एवं दूध के लिए पाली जाती है। बकरी भी एक लघु रोमान्थी पशु है जो विभिन्न प्रकार के चारा ब्राउज करना पंसद करती है हालांकि यह पेड़ों की पत्तियां भी मजे से खाती है। बकरी की कुछ नस्लें जैसे जमनापारी, बीटल, जखराना एवं सुरती अपनी दूध क्षमता के लिए जानी जाती हैं। ब्लैक बंगाल एवं मालाबारी बकरी एक ब्यांत में दो अथवा अधिक बच्चे दे सकती हैं। दोनों नस्लें अपने मांस के लिए प्रसिद्ध हैं। देश की प्रमुख बकरियों की नस्लों में से एक सिरोही बकरी देश के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र की जानी पहचानी नस्ल है। इसका उद्‌गम स्थान राजस्थान राज्य के सिरोही जिले से माना जाता है। यह राजस्थान व आस पास की जलवायु के लिए अति उत्तम नस्ल है। आजकल भेड़–बकरी पालन एक व्यवसायिक रूप लेता जा रहा है अतः उन्नत भेड़–बकरी पालन के लिये रेवड़ को सर्दी, गर्मी एवं बरसात से बचाने हेतु मौसम के अनुकूल आवास व्यवस्था करना अति आवश्यक है। अर्द्धखुला बाड़ा भेड़–बकरी के आवास हेतु एक आदर्श व्यवस्था है। भेड़–बकरी का बाड़ा अन्य स्थान से ऊँचा होना चाहिए ताकि वर्षा का पानी जमा न हो सके। बाड़े में प्रत्येक पशु के लिए पर्याप्त स्थान होने के साथ–साथ बाड़े में हवा व प्रकाश का उचित प्रबंध होना चाहिए तथा रोगी, नवजात मेमनों तथा प्रसव हेतु अलग–अलग आवास व्यवस्था होनी चाहिए। रेवड़ के लिए आवश्यक क्षेत्रफल का ढ़का बाड़ा जिसमें प्रत्येक पशु को 10–12 वर्ग फुट स्थान प्राप्त हो सके, बनाना चाहिए। बाड़े का आधा भाग छप्पर या एस्बेस्टस की चद्‌दरों से ढ़का होना चाहिये जिसको सर्दी या गर्मी में उपयोग कर सकें, खाली खुले बाड़े को तार या जाली से घेर कर बांट सकते हैं। छत पर 2 से 3 इंच मोटा छप्पर डाल दिया जाये तो गर्मी व सर्दी से

काफी राहत मिलती हैं। खुले हुए भाग में और बाड़े के आस–पास वाली जगह छायादार वृक्ष जैसे– अरडू, नीम, पीपल, बरगद आदि लगाने चाहियें, जो गर्मी के दिनों में बाड़े को ठंडा रखनें में मदद करते हैं तथा साथ ही समय समय पर चारे की आवश्यकता को भी पूरा करते हैं। हमारे देश की जलवायु के लिए पूर्व–पश्चिम दिशा में बनाये गये बाड़े उत्तर–दक्षिण दिशा वाले आवासों से अधिक आरामदायक होते हैं। पूर्व–पश्चिम दिशा के आवासों में जाड़ों में धूप अन्दर तक जाती हैं तथा गर्मी में धूप को आसानी से अन्दर जाने से रोका जा सकता है। बाड़े की मिट्टी को खोदकर दो तीन महीने के अन्तराल पर चूना मिलाते रहने से परजीवियों का अतिक्रमण कम हो जाता है। मेमनें वाले बाड़े में सूखी घास का बिछौना भी होना चाहिए जिससे वह मिट्टी न खा सकें। समुचित मात्रा में पोषण उपलब्ध होने पर भेड़–बकरियों को वर्ष में कभी भी ग्याभिन करवाया जा सकता है। परन्तु ग्याभिन कराते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे पैदा होते समय मौसम न अधिक गर्म हो और न अधिक ठंडा हो। प्रजनन का समय ऐसा रखना चाहिए जिससे कि भेड़ों को गर्भावस्था के समय चराई के लिए काफी मात्रा में घास उपलब्ध हो। ऐसे समय पैदा होने वाने मेमनों का जन्म भार अधिक होता है तथा मृत्युदर भी कम होती है। ग्याभिन कराने के लिए उत्तम नस्ल का हृष्ट–पुष्ट स्वस्थ नर ही प्रयोग में लाना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि रेवड में अन्तः प्रजनन न होने पाए क्योंकि इससे भेड़– बकरियों के उत्पादन स्तर में कमी आ जाती है। इसके लिए ध्यान रखे कि मेंढ़े व बकरों का मिलान उसके निकट संबंधी से नहीं कराया जाए। अन्तः प्रजनन को रोकने के लिए भेड़–बकरी पालक अपने मेंढ़े व बकरों का उपयोग करने के बाद किसी दूसरे के रेवड़ के मेंढ़े व बकरों से अपने मेंढ़े व बकरों को बदल सकता है। रेवड़ में बाहर से चयनित मेंढ़े व बकरों को खरीद कर उपयोग करने से रेवड़ का खून बदल जाता हैं और रेवड़ का उत्पादन स्तर बढ़ जाता है। गर्भित भेड़–बकरियों को अलग से साफ स्वच्छ एवं नमी रहित स्थान पर रखना चाहिए तथा उनके आवास में चारे–दाने एवं पानी हेतु पर्याप्त बर्तन/पात्र की व्यवस्था होनी चाहिए। उचित देखभाल के अभाव में मेंमनों में प्रथम सप्ताह की आयु से एक माह की आयु तक मृत्यु दर 30 प्रतिशत तक भी पहुंच जाती है। मेंमनो के जन्म के पश्चात सबसे पहले साफ व सूखे कपड़े से साफ कर देना चाहिए जिससे वह अच्छी तरह से सांस ले सकें। बच्चे के नाल को उसके शरीर से जुड़े हुए स्थान से लगभग 3–4 सेमी. छोड़कर तेज धार वाले चाकू से काटकर टिंचर आयोडिन लगाना चाहिए। मेंमनों के पैदा होते ही मां का प्रथम दूध (खीस) पिलाना आवश्यक है। बच्चों को रखने का स्थान साफ, सूखा एवं हवादार होना चाहिए। बच्चों को बाड़े में रखने से लगभग 10 दिन पूर्व फर्श की कम से कम 8 इंच खुदाई करके उसमें चूना और बी.एच.सी. पाउडर मिला देना चाहिए। मौसम अनुसार बच्चों के आवास में ठंडी हवा व ठंड से बचाव हेतु सूखी घास–फूस की बिछावन व छप्पर की व्यवस्था होनी चाहिए। पशुओं द्वारा अधिक उत्पादन तथा उनके स्वस्थ जीवन निर्वाह हेतु यह अति आवश्यक हो जाता है

कि उनकी आहारीय व्यवस्था का उचित प्रबन्ध हो अन्यथा उनकी आहारीय व्यवस्था में कहीं पर भी आई कमी का पशुओं की वृद्वि तथा उनके उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। भेड़–बकरी अपने शरीर के वजन का 4 प्रतिशत तक सूखा पदार्थ प्रतिदिन आराम से ग्रहण कर सकती है, जिसे सूखे व हरे चारे तथा दाने से पूरा किया जाता है। भेड़–बकरी पालन पर लागत कम आये इसके लिए जरूरी है चारे पर आने वाली लागत को कम किया जाये। इसके लिए ऐसे चारे दाने का प्रयोग किया जाये जो किसान के पास या गाँव में आसानी से उपलब्ध हों व उनकी खरीददारी ऐसे समय की जाये जब वे तुलनात्मक रूप से सस्ती दर पर मिल सकतें हो। भेड़–बकरी कुल चारे का 70–80 प्रतिशत हिस्सा चारागाह से प्राप्त करती है एवं लगभग एक किलो चारा व कुल दाने की मात्रा उनको बाड़े पर ही दी जाती है। भेड़–बकरी के लिए पेड पौधों की पत्तियां व फलियां, ताजे हरे व प्रोटीन युक्त चारे का उत्तम साधन है, इनकों सुखाकर भी खिलाया जाता है। सूखे के समय पशुओं को भूख एवं कुपोषण से बचाने हेतु उनके आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए इसके लिये वन तथा चारागाह क्षेत्रों में

उपस्थित विभिन्न वृक्षों जैसे– खेजड़ी, नीम, अरडू, कीकर, पीपल, बरगद, ककेडा, पिलवन, शहतूत व बबूल आदि वृक्षों की पत्तियों को इनके बाहुल्य वाले समय में एकत्रित करके रख लिया जाना चाहिए जिससे विषम परिस्थितियों में इनका उपयोग कर पशुओं को भूखा रहने से बचाया जा सके। अधिकतर यह देखा गया है कि फलियाँ पेड़ पर सूखने के बाद झड़ जाती हैं जिन्हे पशु स्वयं खा लेते हैं किन्तु इस प्रकार समुचित उपयोग हेतु इनको पेड़ से गिरने से पूर्व ही एकत्रित करके समय आने पर पशु आहार में आवश्यकतानुसार मिला देना चाहिए। इस प्रकार की खिलाई से ने केवल पशु भार में वृद्धि होती है बल्कि प्रजनन क्षमता में भी वृद्धि होती है तथा अच्छी खिलाई से मृत्यु दर में भी कमी आती है। भेड़–बकरी को रसोई से उत्पन जैविक कचरा भी खिलाया जा सकता है। समय–समय पर भेड़ों को संक्रामक रोगों (फडकिया, चेचक, खुर–मुँह पका) के रोग निरोधक टीके लगवाने चाहिए। बकरियों में होने वाली आम बीमारियों जैसे कि थनैला (मास्टाईटिस), ब्रूसीलोसिस, सी. सी. पी.पी., पी. पी. आर. इत्यादि के प्रति अवगत एवं सावधान रहना चाहिए तथा समय से इलाज करना चाहिए नहीं तो अधिक मृत्युदर से भारी नुकसान भी हो सकता है। रोगों से बचाव के लिए समय–समय पर रोग निरोधक टीके लगवाना आवश्यक है। खाज, जूँ, चींचड़ और इनसे उत्पन्न पीलिया रोग की रोकथाम के लिए वर्ष में 2 बार दवा के पानी से स्नान कराना अति आवश्यक है। बाडों की नियमित सफाई व उनको कीटाणु रहित रखना चाहिये। वर्ष में कम से कम एक बार बाडे की मिटटी खुदवाकर बदल देना चाहिये और उसमें चूना मिला देना चाहिये व दीवारों पर पैराथियान आदि का बुरकाव तथा कभी कभी नीम की पत्तियों का धुआँ भी कर देना चाहिए। कुछ समय तक पशुओं को इस तरह के बाड़े में नहीं रखना चाहिए ऐसा करने से बाड़े की मिटटी में उपस्थित सभी कीटाणु पूर्ण रुप से समाप्त हो जायेगें। संक्रामक रोगों जैसें फड़किया या

इंटेरोटाक्सीमिया का टीका फरवरी–मार्च या जुलाई में, माता या पाक्स का टीका ठंड से पहले अक्टूबर–नवम्बर में प्रतिवर्ष तथा लघुरोमंथी महामारी या पीपीआर से बचाव हेतु टीका पहली बार कभी भी लगवाया जा सकता है। बड़ी भेड़–बकरी को पीपीआर टीका तीन वर्ष बाद जबकि मेंमनों–छौनों को यह तीनों टीके तीन–चार माह की उम्र मे प्रतिवर्ष लगवाने चाहिए। टीका खरीदने से लेकर लगाने तक बर्फ मे ही रखना चाहिए अन्यथा टीका रोग से बचाव नहीं करता है।

भारत में पायी जाने वाली प्रमुख भेड़ों एवं बकरियों की नस्लें

क्षेत्र	भेड़ों की नस्लें	बकरियों की नस्लें
उत्तर का ठंडा क्षेत्र	गद्दी, रामपुर बुशेर, भकरवाल, पूँछी, करनाह, गुरेज, कश्मीर मेरिनो, चाँगथाँगी।	चागंथगी, चेगु, गद्दी, भाकरवाली।
उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र	चोकला, नाली, मारवाड़ी, जैसलमेरी, पूगल, मालपुरा, सोनाड़ी, पाटनवाड़ी, मुजफ्फरनगरी, जालौनी, मगरा, पंचाली, कजली।	बीटल, जमनापारी, बरबरी, पंतजा, जखराना, मारवाड़ी, कहमी, सिरोही, सूरती, रोहिलखंडी, गोहिलबाड़ी, कच्छी, मेहसानी, झालावाडी, संगमनेरी, उस्मानावादी, कांकण कन्याल, ब्रेरारी ।
दक्षिणी क्षेत्र	दक्कनी, नेलौर, बेलारी, हासन, मेचेरी, किलाकरसल, मांडया, वेम्बूर, वेम्बूर, कोयम्बटूर, नीलगिरि, रामनाद–व्हाइट, मद्रास रेड, त्रिचि ब्लैक, केन्गयूरी, कचैकात्त्य ब्लैक, चेवाडु।	कन्नीअडु, कोदियाड, सलेम ब्लैक, मालावारी, अतापंदी, तेरासा, बिदरी, नंदीदुर्गा।
पूर्वोत्तर क्षेत्र	छोटा नागपुरी, शाहाबादी, बालांगिर, गंजम, तिब्बतन, बोनपाला, गरोल, केंद्रापाड़ा।	ब्लैक बंगाल, असम हिल, गंजम, सुमिन्ने ।

भेड़–बकरी पालन में सावधानी

1. अपने क्षेत्र की जलवायु एवं उपयोगिता अनुसार ही भेड़–बकरी की नस्ल का चुनाव करना चाहिए।
2. मांस, दूध एवं ऊन बेचने हेतु बाजार की उपलब्धता की जानकारी एकत्रित करनी चाहिए।
3. गर्भवती मादाओं एवं नवजात शिशुओं के पोषण एवं आवास का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
4. भेड़–बकरी में होने वाली आम बिमारियों की जानकारी लेनी चाहिए एवं बिमार होने पर समुचित इलाज की व्यवस्था करनी चाहिए।

खरगोश पालन

बैकयार्ड खरगोश पालन से भी ग्रामीण क्षेत्रों में आये श्रमिकगण अपने एवं अपने परिवार के स्वास्थ्य तथा आर्थिक हालात सुधार सकते हैं। खरगोश पालन से परिवार के लिए मांस उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है एवं अधिशेष भाग को बेचकर दैनिक जरूरतों को पूरा किया जा सकता है। खरगोश एक जुगाली करने वाले तथा मोनो गैस्ट्रिक पशुओं के बीच का जानवर है। रोमान्थि पशुओं की भांति खरगोश भी हरे चारे एवं थोडे बहुत अनाज वाले दाने पर जीवन यापन कर सकता

है। खरगोश को हरे चारे को मांस में बदलने वाले जानवर के रूप में देखा जाता है। यह मुर्गियों की तरह ही छोटा होता है। परंतु अपेक्षाकृत मानव योग्य भोजन पर कम निर्भर करता है। खरगोश पालन से एक ओर हमें कम वसा तथा अधिक प्रोटीन युक्त मांस मिलता है साथ ही मुर्गियों में होने वाले खतरनाक संक्रमण जैसे मानव संचारी बर्ड फ्लू का खतरा भी नहीं होता है। खरगोश विशेष रूप से दुर्गम पहाड़ी, वर्षावन एवं बागवानी वाले क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में खरगोश बैकयार्ड रियरिंग सिस्टम में घर के पीछे खाली सुरक्षित स्थानों पर रखा जा सकता है। उच्च गुणवत्ता के प्रोटीन तथा कम वसा एवं कम सोडियम होने के कारण खरगोश के मांस की मांग नित्य बढ़ती जा रही है। खरगोश मांस के साथ–साथ अच्छी किस्म की फर भी प्रदान करते हैं। केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, पिछले चालीस वर्षों से मांस एवं रेशे उत्पादन के लिए विदेशों से आयातित खरगोश की नस्लें जैसे कि न्यूजीलैंड व्हाइट, सोवियत चिनचिला, ग्रे व व्हाइट जाईंट आदि का चयनित प्रजनन एवं देश के विभिन्न क्षेत्रों में मांग के अनुसार वितरण कर रहा है। देश के ठंड़ी जलवायु वाले पहाड़ी क्षेत्रों में फर देने वाला अंगोरा खरगोश भी एक अच्छा विकल्प है। खरगोश को हच (केज) एवं शेड प्रणाली के आवास में रखा जा सकता है। बैकयार्ड प्रणाली के लिए हच आवासीय व्यवस्था उपयुक्त मानी जाती है। छोट–छोटे केज जो कि स्थानीय बाजारों में उपलब्ध सस्ती सामाग्री जैसे लकड़ी, पेड़ों की टहनियॉ, बांस के गत्ते, हाथीघास एवं 12–14 गेज मोटी कलई चढी लोहे के तारों इत्यादि से बनाई जा सकती है। खरगोश के लिए आवास व्यवस्था इस प्रकार से होनी चाहिए जिससे हाइपो व हाइपरथर्मियां से बचाया जा सके। खरगोश अपने खाने का सत्तर–अस्सी प्रतिशत हरे चारे से प्राप्त कर लेता है। चारे में मुख्यतः फली वाले पौधे जैसे कि लोबिया, बरसीम, लुर्सन, जई, दूब घास इत्यादि चाव से खाता है। इसके अलावा यह शहतूत एवं अरडू की पत्तियॉ भी खा लेती है। अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए खरगोश पालन अर्ध–गहन तरीके से किया जाना चाहिए जिसमें अनाज मिश्रित राशन को 3–4 मिली मीटर आकार की पेलेट बनाकर दिया जा सकता है। वीनर शशक को 50 ग्राम प्रतिदिन तथा व्यस्क को 100–150 ग्राम प्रतिदिन अनाज मिश्रण देना चाहिए। गर्मी में पर्याप्त पीने का पानी देना चाहिए। मादा खरगोश 6 महीने के उम्र मे गर्भ धारण करने योग्य हो जाती है। सफल मेटिंग के एक महीने बाद मादा 6–10 बच्चों को जन्म देती है गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली मादाओं को संपूर्ण पोषण देना चाहिए। बच्चों को दो–तीन हफ्ते तक दूध पीने देना चाहिए। खरगोश के पिंजरे तथा अन्य आवासीय परिसर में नियमित साफ–सफाई का ध्यान रखना चाहिए। अच्छी साफ–सफाई खरगोशों में होने वाली बीमारियों से बचाने के लिए अहम होता है। शेड के फर्श पर हफ्ते में एक बार चूना डालना चाहिए। खरगोश में कुछ सामान्य जीवाणु एवं परजीवी जनित रोग हाने की संभावना होती है। पासच्यरोलासिस न्यूमोनिया तथा परजीवी जनित आंत्र शोध मुख्य रूप से पायी जाने वाली बीमारी है जिसका समय पर इलाज किया जाना चाहिए।

खरगोश पालन के फायदे

1. खरगोश एक छोटे आकार का पशु है जिसे कम भोजन एवं छोटे शेड की जरूरत होती है।
2. इसमें लघु गर्भधारण की अवधि जो केवल 30–32 दिन होती है। तथा एक बार में 6 से 10 बच्चे देती है।
3. इसमें शून्य अनाज आहार पर जीवित रहने की क्षमता है।
4. यह सामान्यतः मनुष्यों को होने वाली बिमारियां नहीं फैलाता है।

5. कम वसा वाले लिन मांस उत्पादन की क्षमता है।

भेड, बकरी एवं खरगोश पालन गरीब, बेरोजगार ग्रामीण लोगों के लिए एक वरदान सिद्ध हो सकता है। मांस की डिमांड लगातार बढ़ रही है तथा वर्तमान परिस्थियों में ऐसा प्रतीत होता है कि भारत से मांस का निर्यात बढ सकता है। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि आने वाले समय में भेड़–बकरी एवं खरगोश पालन आत्मनिर्भर भारत बनाने के दिशा में एक मील का पत्थर साबित होगा।

6 दशकों से राष्ट्र की सेवा में समर्पित

भेड़-बकरियों की तुलनात्मक विशेषताएँ एवं पारिस्थितिकी संतुलन

अरूण कुमार, राजीव कुमार, सिद्धार्थ मिश्रा व आर सी शर्मा

साधारणतया भेड़ एवं बकरी समान दिखने वाले पशु हैं, परन्तु दोनों ही पशु अलग–अलग जातियों से संबंध रखते हैं। अतः इनको अलग अलग पहचान देने वाली विशिष्टताओं को जानना बहुत ही रोचक एवं महत्वपूर्ण है। इसी प्रयास में इन दोनों जातियों की तुलनात्मक विशिष्टताओं का विवरण सारणी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन विशिष्टताओं को विभिन्न उपविभाजनों, मुख्यतः शारीरिक विशेषताएँ, वितरण एवं अनुकूल वातावरण, पोषण, उपयोगिता, पुनर्रुत्पादन एवं बीमारियों के रूप में बाँटा गया है।

तुलनात्मक विशेषताएँ

(क)	शारीरिक विशेषताएँ	बकरी	भेड
	नर पश्च गंध ग्रंथि	उपस्थित	अनुपस्थित
	चेहरा एवं पाँव की ग्रंथि	अनुपस्थित	उपस्थित
	दाढ़ी	प्रायः उपस्थित	दुर्लभ
	लटकन/झब्बा	दुग्ध प्रजातियों में सामान्य	दुर्लभ
	होंठ	ऊपरी होंठ में दरार एवं गतिशील	दरार अनुपस्थित तथा कम गतिशील
	बाह्य त्वचा	मुख्यतः बालदार	मुख्यतः ऊनदार
	पूँछ	छोटी तथा सामान्यतः उर्ध्वाधर	छोटी तथा अधोगामी
	खुर	खोखला एवं गद्देदार	मोटी गद्दी जैसा
	सींग	विविध प्रकार के (दक्षिणवर्ती घुमाव अधिक)	एक समान (उत्तरवर्ती घुमाव कम)
	बुद्धिमता	अधिक	कम
	मैंगनी	गोली	लेई
	जल की कमी सहने की क्षमता	अधिक	मध्यम
(ख)	वितरण एवं पसंदीदा वातावरण		
	प्रकृतिवास	मुख्यतः उष्ण प्रदेश	मुख्यतः समशीतोष्ण प्रदेश
	आवास क्षेत्र	कम वर्षा वाले, रेतीले तथा जल्दी पानी सोखने वाले जमीनी क्षेत्र	मध्यम वर्षा वाले, विभिन्न प्रकार की मिट्टी वाले क्षेत्र

(ग)	**पोषण**		
	खाने की आदत	ढूँढने की प्रकृति अधिक चयनशील	चरने वाले, कम चयनशील
	भोजन के प्रकार	पसंदीदा आहार खाने की आदत ज्यादा	सब प्रकार के आहार खाने की आदत
	पेड़ पत्तियाँ	पंसदीदा आहार	कम पसंदीदा
	पाचन क्षमता	मोटा रेशेदार भूसा पचाने में अधिक सक्षम	कम सक्षम
(घ)	**उपयोगिता**		
(अ)	**मांस**		
(1)	कुल विक्रय योग्य एवं खाद्य भाग	अधिक	कम
(2)	वसा वितरण	मुख्यतः आंतरिक	मुख्यतःउपत्वचीय
(3)	गंध	विशिष्ट गंध	कम गंध
(ब)	**दुग्ध**	सामान्य परंतु उपप्रधान	नहीं के बराबर
(1)	क्षमता	अधिक	कम
(2)	छोटा वसा गोलिका की मात्रा	उच्च प्रतिशत	निम्न प्रतिशत
(3)	टीबी जीवाणु की उपस्थिति	अतिन्यून/अति दुर्लभ	न्यून/दुर्लभ
(4)	एलर्जी/प्रत्युर्जता कारकों की उपस्थिति	अनुपस्थित	उपस्थित
(स)	**रेशा/ऊन**	नगण्य, केवल मोहेर एवं पशमीना को छोड़कर	सभी प्रजातियों में महत्वपूर्ण
(द)	**त्वचा/चमड़ी/खाल**	प्रायः महत्वपूर्ण	प्रायःमहत्वहीन
(य)	**पुनर्रूत्पादन**		
	उर्वरता एवं बहुजनता	बहुत अस्थिर/परिवर्तनशील	बहुत अस्थिर/परिवर्तनशील प्रायः धीरे–2 बढ़ती जाती है।
(च)	**बीमारियाँ**		
(1)	निमोनिया	अतिसंवेदनशील	कम संवेदनशील
(2)	जठर एवं आँत शोथ	सामान्य	कम सामान्य
(3)	सी.सी. मक्खी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता	प्रतिरोध उपस्थित	संवेदनशील
(4)	पाँव में सड़न	सामान्य	सामान्य
(5)	संक्रामक त्वचीय बीमारियाँ	अधिक	कम
(6)	मल	अधिक	कम

वैज्ञानिक दृष्टि से भेड़–बकरी पालन के विश्लेषण से हम पाते हैं कि भेड़–बकरी पालन अन्य पालतू जानवरों से निम्न प्रकार लाभकारी है:

- यह जानवर शुष्क एव पहाड़ी स्थानों में आसानी से पाले जाते हैं। ये जानवर इन क्षेत्रों में पाई जाने वाली वनस्पतियों, घास, पौधे आदि को आसानी से खाते हैं जिन्हें अन्य जानवर नहीं खाते हैं।
- इन जानवरों से आय जल्दी और आसानी से आती है। इनके बच्चे 3 माह से लेकर 9 माह में बेच दिए जाते हैं तथा एक वर्ष की उम्र में भेड़ या बकरी बच्चे पैदा करने लगती है जबकि अन्य जानवरों में इसके लिए 4 वर्ष का समय लगता है।
- भेड़–बकरी के उत्पदन में कम ऊर्जा की खपत होती है।
- दुधारू जानवरों को खाने के लिए उत्तम प्रकार की घास तथा दाना आवश्यक होता है जिसके लिए उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह जानवर मानव के भोजन उगाने में प्रतियोगी की भूमिका में होते हैं जबकि भेड़–बकरी बची हुई घास आदि पर निर्भर होता है। अतः मानव के भोजन से प्रतियोगिता नहीं होती है।
- इन जानवरों को पालने का व्यवसाय करने में काफी कम पूँजी की जरूरत होती है। ये जानवर अकाल के समय भी कम पोषण पर भी जीवित रहने में सक्षम हैं।

कुछ अन्य ऐसे कारक हैं जो भेड़–बकरी पालन के विरोधी पक्ष को दर्शाते हैं। जिनमें प्रमुख हैं:

- भेड़–बकरी को वनों के लिए नुकसान देने वाला जानवर मानने से वन क्षेत्रों में चराई में व्यवधान आने लगा है जिसके कारण इस व्यवसाय में कुछ व्यवधान आया है।
- सिंचाई के साधन बढ़ने के फलस्वरूप कृषि योग्य भूमि बँटी है जिसके परिणामस्वरूप चरागाह कम हुए हैं। साथ–साथ जनसंख्या के बढ़ते दबाव से कृषि योग्य भूमि भी कम हुई है दूसरी ओर अधिक अन्न उत्पादन का दबाव भी बढ़ रहा है। इन सभी कारकों से भेड़–बकरियों को चराने के लिए स्थान में कमी आई है। परिणामस्वरूप इस व्यवसाय के बढ़ने की संभावनाएं कम हो गई हैं।
- विगत वर्षों में भेड़–बकरियों की संख्या में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जिसके कारण चरने योग्य भूमि प्रति जानवर कम हुई है। इन कारणों से भी इन जानवरों को उचित मात्रा में आहार नहीं मिल पाता है। इस प्रकार इन जानवरों से भरपूर उत्पादन नहीं ले पा रहे हैं।
- संश्लेषित रेशों से ऊन को प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है।
- भेड़–बकरियों को विभिन्न प्रकार की जानलेवा बीमारियों का प्रकोप होने का सामना करना पड़ता है।
- इस व्यवसाय को निम्न स्तर का माना जाता है जिस कारण आज के शिक्षित नौजवान अपनाने के लिए आसानी से तैयार नहीं होते हैं। इस प्रकार इस रोजगार के प्रति आकर्षण कम हुआ है।
- इस व्यवसाय से प्राप्त उत्पादों को सरकार की ओर से समर्थन मूल्य नहीं मिला है जबकि अन्य कृषि उपजों जैसे गेहूँ, चावल, दलहन, गन्ना, कपास आदि को सरकार हमेशा से ही समर्थन मूल् पर खरीद करती रही है। इस कारण इनसे

प्राप्त होने वाले उत्पादों को खुले बाजार में प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है तथा विपणन में बिचौलियों के कारण भेड़ पालकों को उनके उत्पाद का भरपूर लाभ नहीं मिल पाता है।

- इस व्यवसाय से जुड़े लोगों में शिक्षा के अभाव के कारण नई तकनीकी की जानकारी एवं उन्हें अपनाने में परेशानी का सामना करना पड़ता है।

उपर्युक्त कारकों के अलावा और भी अन्य कारण हैं जो हमारे देश में पाले जाने वाले भेड़–बकरी व्यवसाय में प्रमुख बाधा बने हैं:–

क. हमारे देश में पाई जाने वाली भेड़ों की उत्पादकता विदेशी भेड़ों से कम पाई जाती है। विदेश में पाई जाने वाली भेड़ लगभग 5–6 किग्रा. ऊन पैदा करती है जबकि भारतीय भेड़ मात्र 1.0–1.5 किग्रा. ऊन का उत्पादन करती है।

ख. विदेश में पाई जाने वाली अधिकांश भेड़ें बारीक ऊन पैदा करती हैं जबकि भारतीय भेड़ मोटी ऊन पैदा करती है। विदेशी भेड़ से प्राप्त होने वाली भेड़ से उच्च गुणवत्ता वाले वस्त्र इत्यादि बनते हैं जबकि हमारे देश में पैदा होने वाली ऊन मोटे उत्पाद जैसे कालीन, दरी एवं नमदा इत्यादि बनाने में उपयोग की जाती है।

ग. विदेशों में पाली जाने वाली भेड़ों का वजन अधिक पाया जाता है जबकि हमारे देश में पाई जाने वाली भेड़ का वजन काफी कम होता है। इसके अतिरिक्त मांस का उत्पादन भी कम होता है। भारतीय भेड़ औसतन 10 किग्रा. मांस उत्पादन करती है जबकि विदेशी भेड़ औसतन 25–30 किग्रा. मांस उत्पादन करती है।

घ. विदेशों में भेड़–बकरी पालन संगठित उद्योग के रूप में विकसित हो रहा है जबकि हमारे देश में यह मात्र असंगठित क्षेत्र में गरीब किसान द्वारा पाले जाने वाले जानवरों के रूप में पनप रहा है।

न. बीमारियों से बचाव के लिए समुचित साधन नहीं हैं।

च. भेड़–बकरी को चराने के लिए समुचित चरागाह नहीं हैं।

उपर्युक्त समस्त कारण इस उद्योग को बढ़ने से रोकते हैं। इन कारकों को दूर करने के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकार एवं विभिन्न केन्द्रीय एवं राज्य कृषि अनुसंधान संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों के माध्यम से विभिन्न विकास एवं

अनुसंधान योजनाएं लागू की हैं। इन योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य इस रोजगार को और अधिक लाभकारी बनाना है। जिससे नवयुवक किसान इस रोजगार की ओर आकर्षित हों। इस योजना के तहत मुख्य रूप से भेड़–बकरी में उन्नत नस्ल विकसित की गई है तथा उनसे अधिक बच्चे पैदा करने के लिए विशेष अनुसंधान किए जा रहे हैं। समुचित आहार उत्पादन हेतु नई चरागाह की फसलों को विकसित किया जा रहा है। फसलों से प्राप्त उत्पादों को भेड़–बकरी के खाने योग्य बनाने के लिए ऐसे अनुसंधान किए जा रहे हैं जिन्हें पौष्टिक आहार प्राप्त हो सके। इन्हीं कार्यक्रमों के अन्तर्गत अधिक ऊन उत्पादन करने वाली भेड़ों को विकसित किया गया है। साथ में ऐसी भेड़–बकरी की नस्लें विकसित की गई हैं जो ज्यादा मांस एवं दूध का उत्पादन करती हैं। भेड़–बकरियों की बीमारियों से निजात पाने के लिए अनुसंधान कर नई दवाएँ एवं टीके उपलब्ध कराए जा रहे हैं। इन समस्त अनुसंधानों को भेड़ बकरी पालक तक पहुँचाने के लिए केन्द्र व राज्य सरकार के द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रसार कार्यक्रमों एवं दवाओं को मुहैया कराया जाता है। भेड़ पालक इन सभी उच्च तकनीकों को अपने रेवड़ों में प्रयोग करके अधिक लाभ कमा सकते हैं।

भेड़–बकरी पालन एवं पारिस्थितिकी संतुलन

हमारे देश में भेड़ों की 44 व बकरियों की 26 नस्लें पाई जाती हैं। ये पशु मुख्यतः मांस और दूध के लिए पाले जाते हैं। पशु गणना वर्ष 2019 के अनुसार भारत वर्ष में 742 लाख भेड़ एवं 1463 लाख बकरियाँ हैं। इन लघु रोमन्थी (भेड़–बकरियों) पशुओं पर 50–55 लाख लोगों की आजीविका निर्भर है। देश के सभी राज्यों में भेड़–बकरियाँ पाली जाती हैं। प्रति वर्ष मांस के लिए 66 प्रतिशत भेड़ों का तथा 72 प्रतिशत बकरियों का वध किया जाता है फिर भी 2019 की पशु गणना के अनुसार इनमें क्रमश 10.50 एवं 14.33 वार्षिक वृद्धि पाई गई है। भारत में विश्व का लगभग 2.4 प्रतिशत भू–भाग स्थित होने पर इसमें विश्व के लगभग 16 प्रतिशत पशु पाले जाने पर भी देश के किसी भी हिस्से में किसानों द्वारा चरागाहों में किसी भी प्रकार की बुआई नहीं की जाती है तथा न ही पैड़ोक बना कर इन पशुओं की चराई को नियंत्रित किया जाता है।

भेड़ के मांस को मटन तथा बकरी के मांस को चेवन कहते हैं। विश्व के कुल मांस उत्पादन में बकरी एवं भेड़ के मांस का हिस्सा क्रमशः 13 प्रतिशत एवं 5 प्रतिशत है। इन दोनों पशुओं से प्राप्त आय की हिस्सेदारी न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि ग्रामीण रोजगार का महत्वपूर्ण साधन भी है। जिन स्थानों पर सिंचाई के पानी का अभाव होता है वहाँ फसल उत्पादन करना लाभप्रद नहीं है, बल्कि इन स्थानों पर भेड़–बकरियाँ पाली जाती हैं। इसके विपरीत सिंचाई के पानी के पर्याप्त साधन होने पर उस स्थान पर भेड़–बकरियों की संख्या कम हो जाती है क्योंकि उस स्थान पर कृषि एक प्रमुख व्यवसाय बना होता है।

वन अनुसंधान संस्थान देहरादून ने वर्ष 1961 में पशुओं की चराई के संबंध में वन के वहन करने की क्षमता (Carrying Capacity) में

अंकित 100 हेक्टेयर वन क्षेत्र 60 गायों के लिए उपयुक्त है जबकि भेड़–बकरी को गाय की तुलना में मात्र आधा यूनिट माना गया था (वर्तमान में 6 भेड–बकरियों को एक गाय यूनिट के समान मानते हैं)। राष्ट्रीय वन नीति 1988 के अनुसार देश के कुल भू–भाग के 33 प्रतिशत भाग में जंगल होना चाहिए जबकि देश के संपूर्ण क्षेत्रफल में मात्र 6,75,538 वर्ग कि.मी. अर्थात 20.55 प्रतिशत वन क्षेत्र (Forest Cover) के अधीन है। अरूणाचलम (1994) ने माना कि पृथ्वी से प्रतिदिन पेड़–पौधों एवं जीवों की लगभग 20 प्रजातियाँ सदा के लिए विलुप्त हो रही हैं। इसके साथ–साथ एक प्रजाति के विलुप्त होने पर लगभग 25 प्रजातियाँ विलुप्त होने की तरफ बढ़ने लगती हैं। भेड़ व बकरियों की चराई की आदतें अलग–अलग होती हैं। बकरियाँ मुख्यः रूप से ब्राउजिंग करती हैं तथा भेड़ें चराई करती हैं। यह देखा गया है कि बकरियों के आहार में 60 प्रतिशत झाड़ी, 30 प्रतिशत घासें तथा 10 प्रतिशत फ्रोर्बस होती हैं जबकि भेड़ों के आहर में 20 प्रतिशत झाड़ी, 30 प्रतिशत फ्रोर्बस तथा 50 प्रतिशत घास होती है। भेड़–बकरियाँ चरागाह में उपस्थित घासों, झाडियों, वृक्षों के बीजों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलाने में मदद करती हैं। इन पशुओं के पाचन प्रणाली में बीजों की कठोर कवच अम्लीय क्रिया से मुलायम होकर निकलती हैं। निकलते समय मेंगनीयुक्त गोलीय रुप में चरागाह में बिखर जाते हैं तथा मृदा में नमी होने के समय (वर्षा में) अनुकूल परिस्थितियों में यह बीज अधिकाधिक संख्या में उग जाते हैं।

चरागाहों में लगातार चराई करने से चरागाह को पुनः स्थापित होने का समय नहीं मिलता जिससे उपयोगी बहुवर्षीय घासों के स्थान पर मौसमी निम्नस्तरीय घासों की किस्मों में बढ़ोत्तरी देखी गई है। कम चराई वाले चरागाह में न केवल आग की दुर्घटना की संभावना रहती है बल्कि इनमें वनस्पतियों की अतिवृद्धि के कारण चारे में रेशे की कठोरता तथा गैर स्वादिष्ट घासों के कारण पशुओं में बीमारियाँ उत्पन्न होती है। इससे यह प्रतीत होता है कि स्वयं लघु रोमन्थी पारिस्थितिकी में विशेष भूमिका अदा करते हैं। पशुओं को चराने तथा पानी पिलाने हेतु ले जाने व वापस लाने के लिए रास्ता बदलते रहना चाहिए जिससे भूमि के कटाव पर नियंत्रण रखा जा सकेगा तथा रास्ते के दोनों तरफ वनस्पति को अनावश्यक अधिक नुकसान होने से बचाया जा सकेगा। घनी वनस्पतियों वाले वनों में भेड़–बकरियों की चराई से उत्पन्न खाली स्थानों के कारण आग लगने से बचाव होता है। किसी भी स्थान पर पाए जाने वाले घास (चरागाहों) को देखकर उस स्थान के आस–पास पाए जाने वाले जीव जंतु (मनुष्य, पशु) के स्वास्थ्य का अनुमान लगाया जा सकता है।

भेड़ एव बकरियों द्वारा वनस्पतियों को हानि पहुँचाकर (Deforestation) वातावरण को असंतुलित बनाने तथा भू–संरक्षण के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता रहा है किंतु विगत दशकों के दौरान भेड़–बकरियों की पारिस्थितिकी पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिए केंद्रीय रूक्ष अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, केंद्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान सस्थान, अविकानगर तथा केंद्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मथुरा तथा कई अन्य एजेन्सियों ने पारिस्थितिकी क्षति के लिए भेड़ एवं बकरी को जिम्मेदार नहीं ठहराया है। प्रधानमंत्री द्वारा गठित हनुमंत राव कमेटी (1987) की रिपोर्ट के अनुसार भेड़ व बकरी को पारिस्थितिकी के लिए प्रतिकूल नहीं माना गया है इसके विपरीत इनसे पारिस्थितिकी में सुधार होना पाया गया है। बकरियों की संख्या में वृद्धि के संबंध में राजस्थान में आहूजा तथा राठौड़ (1987) ने पारिस्थितिकी के बिगड़ने के लिए बकरी को जिम्मेदार ठहराना उचित नहीं माना है बल्कि इसमें मनुष्य के प्रबंध की कमी दर्शाई गई है। बिना वैज्ञानिक आधार के बकरी को पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाला पशु मानना उचित नहीं है जबकि बकरी सबसे खराब पारिस्थितिकी में भी आर्थिक रूप से लाभप्रद होती है। यह भी देखा गया है कि किसी स्थान पर लंबे समय तक चराई नहीं की जाए तो उस स्थान पर तेज गति से आग फैलाने वाली घासों (Cheat Grass) में वृद्धि होती है जिससे गर्मियों में संपूर्ण क्षेत्र में आग लगने की संभावना बनी रहती है।

पारिस्थितिकी असंतुलन के लिए भेड़ व बकरियों की अपेक्षा मनुष्य की अपरिपक्व सोच तथा उसकी गतिविधियाँ ही मुख्य रुप से जिम्मेदार रही हैं। बकरी के आर्थिक महत्व तथा उसके दूध की स्वास्थ्यवर्धक गुणवत्ता को देखते हुए अनेक राज्य बकरी पालन को बढ़ावा देने तथा उन्नत प्रजनन द्वारा उनकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रयासरत हैं। विश्व के चरागाहों में लगभग 300 प्रकार की प्रजातियों के पक्षी प्रजनन करते हैं (राजस्थान में गोडावन, तीलोड इत्यादि)। परन्तु चरागाहों की दशा दिन–प्रतिदिन गिरने से पक्षियों के प्रजनन करने में कठिनाईयाँ आने से इनकी संख्या में कमी आने से नुकसानदायक कीड़े–मकोड़ों की संख्या में वृद्धि दर्ज की गई है। इससे भेड़–बकरियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह पारिस्थितिकी के असंतुलन का स्पष्ट उदाहरण है।

हमारे देश में उपलब्ध पशुओं के लिए चारे की आवश्यकता तथा उपलब्धता में काफी अंतर है। इसके साथ ही चारे की किस्म में भी अनेक स्थानों पर गिरावट देखी गई है। अतः अच्छे किस्म के चारे की मात्रा बढ़ाई जाए या बेकार एवं नकारा पशुओं की संख्या घटाकर इनकी संख्या में कमी करनी चाहिए। इसके साथ–साथ चारे की पूरक आपूर्ति भी करनी चाहिए ताकि सफल पशुपालन हो सके। किसी भी त्रि–स्तरीय चरागाह क्षेत्र में सबसे पहले बकरियों को चराना चाहिए उसके बाद गाय, भैंस एवं भेड़ों को चराना चाहिए। भेड़ों की चराई के बाद चरागाह क्षेत्र को पुनर्वृद्वि/पुनर्बीजन के लिए छोड़ देना चाहिए। बकरियाँ वृक्षों के निचले हिस्से तथा झाडियों का उपयोग करेंगी। भैंसे, गाय बड़ी–बड़ी घास का तथा अन्त में भेड़ें छोटी–छोटी घास का उपयोग करेंगी।

विभिन्न संस्थानों में किए गए अध्ययनों में यह पाया गया है कि शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्र के त्रिस्तरीय चरागाह में 3 बकरियाँ या भेड़ें संतोषजनक उत्पादन देने के साथ–साथ मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर कोई दुष्प्रभाव नहीं डालती हैं। भेड़–बकरियों की संख्या पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने में सहायक होती है। किसान अपनी फसलों को काटने के बाद भेड़ व बकरियों के रेवड़ को अपने खेत में बैठाते हैं जिससे खेत में मेंगनी (200 किग्रा. प्रति पशु प्रतिवर्ष) एवं मूत्र के रूप में उत्तम किस्म की खाद प्राप्त होती है। गाय, भैंस की गोबर की खाद की तुलना में भेड़–बकरियों से प्राप्त मेंगनी की खाद में पौधों के लिए आवश्यक नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा लगभग ढाई गुना अधिक होती है। भेड़ बकरियों द्वारा चराई को सिक्के के दो पहलू मानकर अनुसंधान कार्य करना पारिस्थितिकी संतुलन के लिए अनुकूल होगा। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दोनों प्रजातियाँ हमारे देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इनके उत्पाद न सिर्फ घरेलू माँग को पूरा कर रहे हैं बल्कि विदेशी मुद्रा अर्जित करने में भी योगदान कर रहे हैं। इस प्रकार भेड़–बकरी पालन छोटे और लघु किसानों की जीविका का मुख्य साधन बने हुए हैं।

भेड़ पालन-कुछ महत्वपूर्ण जानकारी

पिल्लू मीना, राजीव कुमार, ओ.पी कोली एवं अरुण कुमार तोमर

भेड़ पालन भारत के किसानों एवं राजस्थान के जन–जातीय क्षेत्रों के निवासियों का एक प्रमुख व्यवसाय है। प्राचीन समय से ही भारत के किसानों एवं जन–जातीय क्षेत्र के लोग मुख्यतः भेड़ पालन पर निर्भर रहें है। भेड़ पालक भेड़ से ऊन तथा मांस तो प्राप्त करता ही है, साथ ही भेड़ की खाद भूमि को ऊपजाऊ बनाती है। भेड़ कृषि अयोग्य भूमि में चरती है, कई खरपतवार आदि अनावश्यक घासों का उपयोग करती है तथा उंचाई पर स्थित चरागाह जो कि अन्य पशुओं के लिये अनुपयुक्त हैं, उनका उपयोग करती है । एक भेड़ से 2 वर्ष मे तीन बार मेमना प्राप्त किया जा सकता है। भेड़ पालन व्यवसाय को अधिक लाभदायक बनाने के लिये कुछ महत्वपूर्ण जानकारी निम्न प्रकार से है :–

भेड़ों का खान–पान

सदियों से, भेड़ों ने जंगलों में केवल घास, फसलों के अवशेष खाकर और पानी पीकर अपना जीवन व्यतीत किया है। भेड़ों को भूमि की सतह के बिलकुल करीब स्थित छोटी, कोमल घास खाना पसंद होता है। घास से हमारा अर्थ पौधों की प्रजातियों के एक व्यापक समूह से है, जैसे घास, दूब कासनी,फलियां, झाड़ियां आदि। अंजन घास चारे के लिए एक बहुत मजबूत आधार है, चारे की जैव विविधता सीधे ग्रहण किये जाने वाले भोजन की गुणवत्ता से संबंधित होती है जितना ज्यादा विविध चारा होगा उतनी ही अच्छी गुणवत्ता वाला भोजन होगा। पशु पालक को अपनी भेड़ों के आहार में घास, साबुत मक्के और चारा के साथ ही नमक देना चाहिए। इसके साथ –साथ पेड़ों की पत्तियाँ जैसे की नीम अरडू इत्यादि भी भेड़ों का पसंदीदा आहार है यह मुख्यतः चारे के अभाव वाले दिनों में खिलाई जाती है। भेड़ पत्तियों से पोषकता प्राप्त कर चारे

के अभाव वाले सूखे दिनों में जीवित रह सकती है। भेड़ विभिन्न प्रकार की पत्तियों एवं टहनियों से पोषक तत्व प्राप्त करती है। पशु पालक को चाहिये कि वो भेड़ों को शुद्ध पानी पिलायें और सर्दियों में ताजा पानी ही दिया जाये। भेड़ों को कम से कम 7–8 घंटे बाहर चराना अतिआवश्यक है । इसके बाद, प्रतिदिन अपनी हर भेड़ को सही मात्रा मे दाना देना चाहिए।

भेड़ों का रख–रखाव आपकी भेड़ें संभवतः कभी भी भागने का प्रयास नहीं करेंगी (जब तक कि उन्हें किसी बड़े खतरे का आभास नहीं होता है)। कुछ स्थानों में, उचित प्रशिक्षण के बाद, भेड़ें कस्बों और छोटे गाँवों में इंसानों के साथ दैनिक रूप से टहलने जा सकती हैं, और ये कई कुत्तों से कहीं ज्यादा सीधी और आज्ञाकारी होती हैं। हालाँकि, शिकारी अक्सर भेड़ों पर हमला करते हैं और कई शिकारी उसके कहीं ज्यादा करीब हो सकते हैं (उदाहरण के लिए पड़ोसी का कुत्ता)। लोमड़ी, भेड़िये, सियार और कई अन्य जानवर भेड़ों के सामान्य शिकारी हैं। इसलिए हमें अच्छी मजबूत मेड़ की जरुरत होती है जो हमारे मवेशी की रक्षा कर सके। यह कम से कम 5–6 फीट (1.5 मीटर) ऊँची होना चाहिए। मवेशियों के लिए विशेष पैनल तथा जाली की फैंसिंग भी मिलती हैं, जो विशेष रूप से चालाक शिकारियों से बेहतर सुरक्षा प्रदान करती है। रेवड का अत्यधिक ठंड एवं पाले से वचाव करना चाहिए, खास तौर पर छोटे बच्चों (लैम्ब) को। साथ ही अधिक गर्मी से बचाव करने से प्रतिकूल मौसम मे भी भेड़ों की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है ।

प्रजनन सम्बन्धी

- भेड़ आम तौर पर 1 वर्ष की आयु में पूर्ण वयस्क हो जाती है जो कि स्वस्थ मेमने लेने के लिये आवश्यक है भेड़ों में प्रजनन आठ वर्ष तक होता है। गर्भावस्था औसतन 147 दिन की होती है।
- भेड़ 17 दिन के मद चक्र में 30 घण्टे के लिये गर्मी में आती है। गर्मी के अंतिम समय में मेंढे से सम्पर्क करवाने पर गर्भधारण की अच्छी सम्भावनायें होती है।
- गर्भावस्था तथा उसके पश्चात जब तक मेमने दूध पीते हैं, भेड़ के पालन पोषण पर अधिक ध्यान देना चाहिये। एक मादा भेड़ को गर्भावस्था तथा उसके कुछ समय पश्चात तक संतुलित एवं पौष्टिक आहार अन्य भेड़ों की अपेक्षा अधिक देना चाहिये।
- भेड़ों मे नर मादा का अनुपात 1:40 से अधिक नहीं होना चाहिये। प्रजनन हेतु छोड़ने के दो माह पूर्व से ही उनके आहार पर विशेष ध्यान दें। इस अवधि में संतुलित आहार तथा दाने की मात्रा भी बढा दें।
- नर मेमनों को डेढ़ साल से पहले प्रजनन के लिये उपयोग न् करें तथा समय समय पर उनकी जननेन्द्रिया की जाँच कर लें। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि वयस्क मेढों को तरुण भेड़ों के साथ प्रजनन के लिये छोड़ना चाहिये।
- मेढों को प्रजनन के लिये छोड़ने से पहले यह निश्चित कर लें कि उन्हें उस क्षेत्र में पाई जाने वाली संक्रामक बीमारियों के टीके लगा दिये गये हैं तथा उनको कीटनाशक औषधि से नहलाया जा चुका है। मेंढ़े को प्रजनन के लिये अधिक से अधिक आठ सप्ताह तक छोड़ना चाहिये तथा निश्चित अवधि के पश्चात उन्हें रेवड़ से अलग कर देना चाहिये।
- यदि एक से अधिक मेंढे प्रजनन हेतु छोडने हैं तो नर मेढों मे कोई निश्चित पहचान (कान पर नम्बर) लगा दें ताकि बाद में यह पता चल सके कि किस नर की प्रजनन शक्ति कमजोर है या उससे उत्पादित मेमनें सन्तोषजनक नहीं है

ताकि समय अनुसार उस नर को बदला जा सके। मेढों को यदि रात को प्रजनन के लिये छोड़ना है तो उनके पेट पर नाभि के पास कोई गीला रंग लगा दें जिससे यह पता चल सके कि किस मेंढ़े से कितनी भेडों में प्राकृतिक गर्भाधान हुआ है।

- मेंढ़े का नस्ल के अनुसार कद व शारीरिक गठन उत्तम होना चाहिये। टेढ़े खुर, उठा हुआ कंधा, नीची कमर आदि नहीं होनी चाहिये।
- पैदा होने के 8–12 सप्ताह के पश्चात मेमनों को माँ से अलग कर लें तथा तत्पश्चात उसको संतुलित आहार देना प्रारम्भ करें।
- समय समय पर यह सुनिश्चित करें कि तरुण भेड़ का वजन कम तो नहीं हो रहा है। इस अवधि में उसको अधिक से अधिक हरी घास एवं अन्य चारा उपलब्ध करवायें।
- अनुपयोगी और निम्न स्तर के पशुओं की प्रतिवर्ष छंटनी कर देनी चाहिये अन्यथा उनके पालने का खर्च बढ़ेगा। भेड़ों की छंटनी अधिक से अधिक 1.5 वर्ष में करनी चाहिए। ऊन काटने या प्रजनन के समय से इस आयु तक उनका शारीरिक विकास पूर्ण हो जाता है।

अनुपालन का उत्तरदायित्व

1. केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि–

(क) यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों और उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए निदेशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है; और

(ख) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करे।

भेड़ों को होने वाली महत्त्वपूर्ण बीमारियाँ एवं उसका बचाव

दुष्यन्त कुमार शर्मा, एस जे पांडियन, जी जी सोनावणे, सी पी स्वर्णकार एवं एस आर शर्मा

छोटे जुगाली करने वाले पशु पूरे देश में पशुधन क्षेत्र की रीढ़ है और पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य उत्पाद प्रदान करके पोषण और सामाजिक सुरक्षा दोनों में सुधार के माध्यम से बहुत योगदान करते हैं। इसके अतिरिक्त यह आमदनी का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं और संकट के समय किसानों के लिए एक बीमा के रूप में कार्य करते हैं। इस लेख द्वारा रेवड़ में कुछ महत्वपूर्ण रोगों के बारे में जागरूक करने का प्रयास किया गया है।

अ. विषाणुजनित रोग : –

1. खुर–मुंह रोग (एफ.एम.डी.) : यह बीमारी भी विषाणु जनित छूत का रोग है तथा बहुत जल्दी एक रोग ग्रस्त जानवर से दूसरे जानवरों में फैल जाता है। इस रोग से ग्रस्त जानवरों के मुंह, जीभ, होंठ व खुरों के बीच की खाल में फफोले पड़ जाते हैं, भेड़–बकरी को तेज बुखार आता है, उनके मुंह से लार टपकती है, भेड़–बकरियां लंगडी हो जाती हैं, मुंह व जीभ के अन्दर छाले हो जाने से भेड–बकरियां चारा नहीं खा पाती व कमजोर हो जाती हैं, और कई बार ग्याभिन भेड़–बकरियों का इस रोग से गर्भपात भी हो जाता है, भेड़–बकरियों के बच्चों की मृत्यु दर अधिक होती है। इस रोग में सबसे पहले भेड़ पालक को रोग से ग्रस्त जानवरों को अन्य जानवरों से अलग करना चाहिए। बीमार भेड़ का ईलाज जैसे मुंह के छालों में वेरोग्लिसरिन मलहम, खुरों की सफाई लाल दवाई या नीले थोथे के घोल से या फोरमेलिन के घोल से करनी चाहिए तथा पशु चिकित्सक के परामर्श अनुसार चार–पांच दिन एन्टीबायोटिक इंजेक्शन लगाने चाहिए। प्रत्येक भेड़ पालक को छः महीने के अन्तराल के दौरान रोग से रोकथाम हेतु टीकाकरण करवाना चाहिए।

2. कन्टेजियस एकथाईमा : यह बीमारी भी एक प्रकार के विषाणु द्वारा होती है, इसमें भेड़ के मुंह, नाक व होंठों के बाहरी तरफ फोड़े हो जाते हैं तथा काफी बढ़ जाते हैं जिससे मुंह फूल जाता है तथा घास खाने में तकलीफ होने के साथ–साथ

बीमार भेड़–बकरी को हल्का बुखार भी रहता है। बीमार भेड़ को अलग कर उसका उपचार करना चाहिए तथा उपचार हेतु फोड़ों को लाल दवाई के घोल से धोकर उन पर एन्टीसेप्टिक मलहम लगाना चाहिए, ज्यादा बीमार भेड़ को 4–5 दिन एन्टीबायोटिक इंजेक्शन लगाना चाहिए।

3. रेबीज रोग : यह बीमारी भेड़ को पागल कुत्तों/लोमड़ी व नेवले के काटने से होती है, यह बीमारी विषाणु द्वारा होती है तथा पागल कुत्तों व अन्य पागल पशु के काटने व उसकी लार द्वारा भेड़ में हो जाती है। बीमारी हो जाने पर इसका ईलाज हो पाना संभव नहीं है। इसलिए भेड़ पालकों को सुझाव दिया जाता है कि जब भी भेड़ को कोई पागल कुत्ता या लोमड़ी काटता है तो तुरन्त नजदीक के पशु चिकित्सालय या औषधालय में जाकर इसकी सूचना दें तथा समय रहते इसका टीकाकरण करवाना सुनिश्चित करें।

4. पी.पी.आर. रोग (बकरी प्लेग) : यह भेड़–बकरियों में होने वाली खतरनाक बीमारी है जो कि एक संक्रमित जानवर से दूसरे स्वस्थ जानवरो में फैलती है। इस बीमारी में मुख्य लक्षण जैसे कि बुखार, दस्त लगना, मुंह में छाले हो जाना, निमोनिया इत्यादि होते हैं। इस बीमारी की रोकथाम के लिए पी पी आर का टीकाकरण करना चाहिए। बीमार जानवर को अलग करके उपचार करना चाहिए।

ब. जीवाणुजनित रोग –

1. एन्थ्रेक्स रोग : इस बीमारी को भेड़ पालक रक्तांजली रोग से जानते हैं यह रोग जीवाणु द्वारा होता है, इस रोग में भेड़ में बहुत तेज बुखार आता है। मृत भेड़ के नाक, कान, मुंह व गुदा से खून का रिसाव होता है। यह रोग रेवड़ में काम करने वाले मनुष्यों को भी हो सकता है अतः पशु पालक को विषेश सावधानी बरतनी चाहिए। इस रोग से मरे भेड़–बकरियों की खाल नहीं निकालनी चाहिए तथा मृत जानवर को गहरे गड्ढे में दबा देना चाहिए एवं चरागाह को बदल देना चाहिए। बीमार भेड़ को एन्टीबायोटिक इंजेक्शन चार–पांच दिन पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार देना चाहिए। इस रोग से बचाव हेतु टीकाकरण करवाया जा सकता है।

2. ब्रूसीलोसिस : यह बीमारी जीवाणु द्वारा होती है, इस बीमारी में ग्याभिन भेड़ में चार या साढ़े चार महीने के दौरान गर्भपात हो जाता है, बीमार भेड़ की बच्चेदानी भी पक जाती है। गर्भपात होने वाली भेड़ की जेर अटक जाती है या समयानुसार नहीं गिरती है। इस बीमारी से मेंढ़ों का अण्डकोश पक जाता है तथा घुटनों में भी सूजन आ जाती है, जिससे इनकी प्रजनन क्षमता कम हो जाती है। इस रोग के लक्षण पाये जाने पर भेड़ पालक को सारे का सारा झुंड खत्म कर नये जानवर पालने चाहिए। कई बार भेड़ पालक गर्भपात हुए मृत मेमने को या उसके भेड़ की जेर खुले में फेंक देते हैं जिससे कि इस बीमारी के जीवाणु अन्य झुंड में भी फैल जाते हैं। अतः भेड़ पालकों को चाहिए कि वह ऐसे मृत मेमने व जेर को गहरा गड्ढा कर उसमे दबा देना चाहिए। यह रोग भेड़ों से मनुष्य में भी आ जाता है। जिससे मनुष्य में हल्का बुखार, बदन व सर दर्द अधिक पसीना आना व उनके अण्डकोश में भी सूजन आ जाती है, इसलिए भेड़ पालकों को इस रोग से बचाव हेतु समय–समय पर अपने खून की जांच करवा लेना चाहिए।

3. फुट रोट : यह रोग जीवाणुओं द्वारा होता है। इस रोग में भेड़–बकरियों के खुरों की बीच की चमड़ी पक जाती है तथा वह लंगडी हो जाती है। भेड़ों को तेज बुखार हो जाता है तथा इस रोग के जीवाणु मिट्टी द्वारा एक से दूसरे जानवर में चले जाते हैं, यह भी एक छूत का रोग है जोकि एक जानवर से पूरे झुंड में फैला जाता है। रोग से बचाव हेतु इस रोग से ग्रस्त भेड़ को अपने झुंड में ना लायें तथा जिस रास्ते से इस बीमारी वाला अन्य झुंड गुजरा हो, उस रास्ते से एक सप्ताह तक अपने झुंड को न ले जाये। बीमार भेड़ के खुरों की सफाई रखें, जिसके लिए उनके खुरों को नीले थोथे (कापरसल्फेट) के घोल से धोयें तथा एन्टीबायोटिक मलहम तथा चिकित्सक की सलाह अनुसार चार–पांच दिनों तक एन्टीबायोटिक इंजेक्शन लगायें।

4. गलघोंटू : यह बीमारी भेड़–बकरियों में जीवाणुओं द्वार फैलती है तथा मुख्यतया जब भेड़ पालक अपने झुंड को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है उस समय इस रोग के अधिक फैलने की संभावना होती है। इस बीमारी से भेड़–बकरियों के गले में सूजन हो जाती है जिससे उसे सांस लेने में कठिनाई होती है तथा इस बीमारी में भेड–बकरी को तेज बुखार, नाक से पीला श्राव निकलना तथा निमोनिया हो जाता है और जानवर की मृत्यु हो सकती है। बचाव के लिए टीकाकरण करना चाहिए।

5. एन्टीरोटोक्सीमियां : यह भेड़ का असंक्रामक रोग है, यह मुख्यतया जीवाणुओं द्वारा फैलता है, यह जीवाणु प्रायः भेड़–बकरियों के पेट के अन्दर होता है, इस बीमारी में भेड़–बकरियों में तेज दर्द होता है, और अधिकतर छोटे बच्चों में यह रोग ज्यादा होता है तथा जानवर धीरे–धीरे कमजोर हो जाता है कई बार उसे चक्कर आते हैं, मुंह से झाग निकलता है, और दस्त के साथ खून भी आता है। इस बीमारी से बचाव हेतु भेड़ पालक को प्राथमिक उपचार हेतु नमक व चीनी का घोल पिलाना चाहिए, क्योंकि यह दस्त के कारण जानवर के शरीर में हुई पानी की कमी को पूरा करता है। इसके साथ पेट के कीड़ों की दवाई अपने झुंड को पिलानी चाहिए, घास चरने की जगह समय–समय पर बदलनी चाहिए, दस्त तथा बुखार को कम करने के लिये पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार दवाई व उपचार करवाना चाहिए। बचाव हेतु भेड़ पालक को वर्ष में एक बार टीकाकरण करवाना चाहिए।

स. परजीवीजनित रोग –

1. गोल कीड़े : परजीवी कृमि संक्रमण को नेमाटोड संक्रमण भी कहते हैं। नीमाटोड परजीवी होते हैं। परजीवी (पैरासाइट्स) वह परजीवी है जो जानवर के पेट में प्रवेश करके बाहर या भीतर (ऊतकों या इंद्रियों से) जुड़ जाती है और सारे पोषक तत्वों को चूस लेता है। कुछ परजीवी अर्थात अंततः कृमि कमजोर जानवर में बीमारी फैलाते हैं। कृमि (गोल कृमि) लंबे, आवरणहीन और बिना हड्डी वाले होते हैं। इनके बच्चे अंडे या कृमि कोश से डिंभक (लारवल) (सेता हुआ नया कृमि) के रूप में बढ़ते हुए त्वचा, मांसपेशियां, फेफड़ा या आंत (आंत या पाचन मार्ग) के उस ऊतक (टिशू) में कृमि के रूप में बढ़ते जाते हैं जिसे वे संक्रमित करते हैं। भेड़ पालक अपनी भेड़ों को वर्ष में कम से कम 1 बार पेट के कीड़ों को मारने की दवाई पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार अवश्य पिलायें। भेड़ पालक परजीवी में प्रतिरोधी जर्मप्लाज्म को अपने रेवड़ में शामिल कर इसका सतत एवं दीर्घावधि समाधान कर सकते हैं। घूर्णी चराई भी इसका एक समाधान है।

2. टेप वर्म : इस प्रकार के कीड़े भी आंतों में पाए जाते हैं तथा यह कई मीटर लम्बे व रिबन/फीते की तरह होते हैं, यह कीड़े भी भेड़ों में खून चूसते हैं तथा उन्हें कमजोर कर देते हैं। रोग का उपचार व बचाव – भेड़ों के मेंगनियों की जांच करवानी

चाहिए तथा मृत भेड़ों का शव परीक्षण करवाने से इस रोग का पता चलता है, भेड़ों को ज्यादा समय तक एक चरागाह में न चरायें, चरागाह में पौधे व केंचुएं अधिक नहीं होने चाहियें क्योंकि यह इस रोग को फैलने में मदद करते हैं। घूर्णी चराई विधि से भी इसका बचाव किया जा सकता है बीमार भेड़–बकरी का उपचार/ईलाज पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार करें।

3. चर्म रोग : अन्य पशुओं की भांति भेड़ में भी जूएं, पिस्सू, चिंचड़े इत्यादि परजीवी होते हैं। यह भेड़ की चमड़ी में अनेक प्रकार के रोग पैदा करते हैं जिससे जानवर के शरीर में खुजली/चरड हो जाती है तथा जानवर अपने शरीर को बार–बार दूसरे जानवरों के शरीर व पत्थर या पेड़ से खुजलाता है जिससे कि उस जगह पर जख्म हो जाता है। उस जगह की चमड़ी सख्त हो जाती है, व बाल झड़ जाते हैं और धीरे–धीरे यह भेड़ के पूरे शरीर में फैल जाती हैं तथा एक बीमार जानवर से पूरे झुंड/घण में फैल जाती है। जिससे ऊन भेड़ों से बहुत कम व घटिया तथा गुणवत्ता वाली ऊन प्रात होती है। रोगी भेड़ की खाल की खुरचन की जांच पशु चिकित्सक से करवाएं, तथा स्वस्थ भेड़ की बीमारी वाले जानवरों से अलग रखें, और बीमारी वाले जानवरों को अधिक नमी वाली जगह पर न रखें, जख्मों को लाल दवाई से धोऐं व हिमैक्स, मलहम जख्मों पर लगाएं, पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार इंजेक्शन आईवर मैक्टिन चमड़ी में लगवाएं। इस रोग के बचाव हेतु वर्ष में भेड़ को कम से कम दो बार कीटनाशक स्नान/डिपिंग अवश्य करवाएं।

सारांश : पशु पालक वैज्ञानिक तरीका अपना कर तथा अच्छी नस्ल (जर्मप्लाज्म) की रेवड़ रख कर कम लागत में अच्छी आय साल भर तक कर सकते हैं।

उच्च गुणवत्ता चारा बीज : चारा उत्पादन हेतु एक महत्वपूर्ण निर्धारक

सुरेश चन्द्र शर्मा, रंगलाल मीणा, आर्तबन्धु साहू व रमेश बाबू शर्मा

चारे की खेती का क्षेत्र, सकल फसली क्षेत्र का लगभग 4% है, जो पिछले चार दशकों से स्थिर है। शहरीकरण, खेती योग्य क्षेत्र का विस्तार, चराई दबाव और औद्योगिकीकरण आदि के कारण परंपरागत चरागाह भूमि धीरे–धीरे कम होती जा रही है। इन कारकों के कारण सूखे फसल के अवशेषों में 26%, हरे चारे में 35% एवं चारा दाने में 41% की कमी है। मांग और आपूर्ति के अंतर को कम करने के लिए चारे की फसलों की उत्पादकता को बढ़ाना बहुत ही आवश्यक है। चारा फसलों के तहत खेती योग्य क्षेत्र का क्षैतिज विस्तार खाद्य फसलों की गंभीर प्रतिस्पर्धा के कारण मुश्किल है। ऊर्ध्वाधर विस्तार के अलावा, चरागाहों के लिए गैर–खेती योग्य क्षेत्रों का उपयोग मांग को संतुलित करने के लिए सबसे व्यवहार्य विकल्पों में से एक है। सीमांत और अनुपयोगी भूमि के व्यापक उपयोग के लिए, बीज सबसे उपयुक्त हैं। हरे चारे के कम उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण कारण है – पर्याप्त मात्रा में गुणवत्ता वाले बीज की अनुपलब्धता है। एक अनुमान के अनुसार, गुणवत्ता वाले बीजों की आवश्यक मात्रा का केवल 25–30% ही चारा फसलों और 10% से कम उन्नत घासों और दलहनी चारों का उपलब्ध हो पाता है। बीज सफल कृषि उत्पादन के लिए मूल सामग्री है। उत्पादकता बढ़ाने के लिए गुणवत्तायुक्त बीज एक प्रमुख साधन है। एक अनुमान के अनुसार, अधिक उपज देने वाली किस्मों के गुणवत्ता वाले बीज के उपयोग से फसल की पैदावार 15–20% तक बढ़ जाती है।

भारतीय न्यूनतम बीज प्रमाणीकरण मानकों (केंद्रीय बीज प्रमाणन बोर्ड, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित) के रूप में भारत सरकार द्वारा निर्धारित अनुशंषित मानकों के आधार पर बीज की गुणवत्ता को निर्धारित किया जाता है। बीज मानकों को वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर विकसित किया गया है जो देश में फैले विभिन्न स्थानों से एकत्र किए गए कई ढेरों के बीज की गुणवत्ता और उत्पादन मानकों पर आधारित थे। इन गुणवत्ता मानकों को पूरा करने के बाद ही बीज को बाजार में बेचा जा सकता है। पर्याप्त मात्रा में गुणवत्ता वाले बीज की कमी से बाजार में नकली बीज का मार्ग प्रशस्त होता है। उपभोक्ताओं को बीज विक्रेताओं द्वारा धोखा देने से बचने के लिए गुणवत्ता मानकों के बारे में जागरूकता की आवश्यकता है। चारे की फसलों का उपभोग योग्य भाग उनके वानस्पतिक भाग हैं। इसलिए, उनके बीज और उसकी गुणवत्ता पर कम जोर दिया गया था। चारे के बीज के ग्राहक किसानों और अन्य हितधारकों को चारा बीज गुणवत्ता मानकों के बारे में कम जानकारी है। वर्तमान लेख हितधारकों के बीच जागरूकता पैदा करने के क्रम में लिखा गया है।

बीज मानकों में मुख्य रूप से तीन गुणवत्ता मापदण्ड शामिल हैं– भौतिक शुद्धता, अंकुरण और नमी। भौतिक शुद्धता से बीज की भौतिक गुणवत्ता के बारे में जानकारी मिलती है। प्रतिशत शुद्ध बीज आर्थिक महत्व के बीज की मात्रा को दर्शाता है। दूसरा मापदण्ड बीज अंकुरण, बीज का सबसे आवश्यक मापदंड है क्योंकि यह न केवल बीज की क्षमता को इंगित करता है, बल्कि खेत में पौधों की संख्या और फसल की उपज को भी प्रभावित करता है। अन्य गुणवत्ता मापदण्ड नमी बीज की भण्डारणीयता को निर्धारित करती है। बीज के मानक उनके आंतरिक कारकों के साथ–साथ बढ़ती परिस्थितियों के आधार पर फसल से भिन्न होते हैं। चारा फसलों के बीज मानक शुद्ध बीज और अंकुरण प्रतिशत के मामले में न्यूनतम आवश्यकता प्रदान करते हैं।

चारा सहित सभी कृषि फसलों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए बीज सबसे जरूरी निवेश है। अन्य निविष्टियों की प्रभावकारिता काफी हद तक आनुवंशिकी गुणवत्तायुक्त बीज की उपलब्धता एवं समय पर बीज की बुवाई पर निर्भर करती है। इसलिए किसानों को उचित मूल्य पर उन्नत किस्मों/संकर चारा फसलों, पशुओं के चारे के बीज की आपूर्ति सुनिश्चित कराना, चारे के उत्पादन को बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है। भारत में चारे का उत्पादन क्रमशः 83.4 लाख हेक्टेयर कृष्य भूमि और 104 लाख हेक्टेयर स्थायी चरागाह भूमि से होता है, जिसमें औसतन 40.0 और 0.75 टन/हेक्टेयर की औसत उपज होती है, जो कि संभावित उपज से बहुत कम है। उच्च उपज देने वाली किस्मों/संकर किस्मों के गुणवत्ता वाले चारे के

अपर्याप्त उत्पादन और आपूर्ति इस कम चारे की उपज का मुख्य कारण हैं।

प्रमाणित/सत्यापित लेबल बीज के लिए उत्थान प्रणाली

नाभिक बीज

एक विशेष किस्म विकसित करने के लिए पादप प्रजनकों द्वारा लगभग 100 प्रतिशत आनुवंशिक रूप से शुद्ध बीज। (प्रजनक बीज में गुणन के लिए उपयोग किया जाता है)

ब्रीडर सीड (गोल्डन पीला टैग)

पादप प्रजनक या प्रायोजकों द्वारा उत्पादित और योग्य पादप प्रजनकों द्वारा अनुमोदित।

(आधार बीज का उत्पादन करने के लिए उपयोग किया जाता है)

आधार बीज (सफेद टैग)

प्रमाणन एजेंसियों की देखरेख में बीज उत्पादन एजेंसियों द्वारा उत्पादित।

(प्रमाणित/सत्य लेबल वाले बीज का उत्पादन करने के लिए उपयोग किया जाता है)

प्रमाणित बीज (ब्लू टैग)

बीज उत्पादन एजेंसियों द्वारा बीज प्रमाणीकरण एजेंसी से प्रमाणीकरण के साथ उत्पादित।

सत्यापित बीज (ओपल ग्रीन टैग)

स्व–प्रमाणन के आधार पर बीज उत्पादन एजेंसियों द्वारा उत्पादित।

फसलों के व्यावसायिक उत्पादन के लिए प्रमाणित और सत्यापित लेबल बीज का उपयोग किया जाता है।

बीज की गुणवत्ता

उन्नत किस्मों के खाद्य बीजों में अच्छा अंकुरण और बीज शक्ति होनी चाहिए, जो कि रोग प्रतिरोधक और उच्च व स्थिर उपज देने की क्षमता वाल हो। बीज हमेशा ठीक से उपचारित, पैक किया हुआ और, नमी की उपयुक्त मात्रा वाला होना चाहिये। क्षतिग्रस्त और रोगग्रस्त बीज से अपेक्षाकृत मुक्त होना चाहिए और अन्य चारा किस्मों, फसलों और खरपतवारों के बीज के साथ–साथ निष्क्रिय सामग्री से मुक्त होना चाहिए।

होना चाहिए और अन्य चारा किस्मों, फसलों और खरपतवारों के बीज के साथ–साथ निष्क्रिय सामग्री से मुक्त होना चाहिए।

गुणवत्ता वाले चारा उत्पादन और विपणन में संगठनों/व्यक्तियों की भूमिका

- केंद्रीय कृषि मंत्रालय/भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद प्रशिक्षण जनशक्ति से उन्नत किस्मों के ब्रीडर बीजों की आपूर्ति का आयोजन करके उत्पादन एजेंसियों का समर्थन करता है। यह उत्पादन एजेंसियों को अधिशेष प्रमाणित/सत्य लेबल वाले बीजों को बाजार में लाने के लिए भी सहायता करता है।

- **उत्पादन एजेंसियां** यह ऐसे संगठन हैं जो वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर आधार पर प्रॉड्यूस और मार्केट क्वालिटी के चारे के बीजों को उत्पादित करते हैं जैसे राज्य डेयरी संघ, दुग्ध संघ इत्यादि जो निम्न बातों का ध्यान रखती है:–

  - पांच साल की अवधि के लिए चारा बीज के लिए उनकी आवश्यकता के बारे में आँकड़े एकत्र करें।

- उपरोक्त आँकड़ों के आधार पर प्रजनक/आधार बीज की वार्षिक आवश्यकता का पता लगाना और तीन साल पहले ऐजेंसियों को प्रजनक के लिए माँगपत्र भेजना।
- प्रजनक/आधार बीज की खरीद की व्यवस्था करना और उनके आगे के गुणन को व्यवस्थित करना। ब्रीडर सीड को प्रजनक बीज और आधार बीज को प्रमाणित/सत्यापित में बहुलीकरण कर वापसी क्रय नीति के तहत् पंजीकृत बीज उगाने वालों द्वारा व्यवस्था करना।
- बीज उत्पादकों को गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन के लिए तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करना।
- बीज भंडारण हेतु गोदाम, कार्यालय–सह–बीज परीक्षण प्रयोगशाला और बीज प्रसंस्करण क्षेत्र– जैसे बीज–क्लीनर–ग्रेडर, विशिष्ट गुरुत्व विभाजक, बीज उपचारण, वजन और पैकिंग और अन्य विविध सुविधाओं के लिए मशीनों का प्रबंधन।
- उपज निरीक्षण और कच्चे बीज की खरीद का आयोजन।
- बीज प्रसंसकरण, ग्रेडिंग, उपचारित करना, पैकिंग, तोलना, लेबलिंग, प्रमाणीकरण व भंडारण का दायित्व लेना।
- सत्य लेबल वाले बीज के उत्पादन का पर्यवेक्षण और अनुमोदन करना।
- प्रमाणित/सत्यापित बीज को उचित मूल्य पर उत्पादकों को समय पर उपलब्ध कराना।

- **बीज उत्पादक** वे किसान और संगठित फॉर्म हैं जिनके पास पर्याप्त सिंचित भूमि है, जो बीज उत्पादन एजेंसियों के साथ पंजीकृत हैं और खरीद–वापस व्यवस्था के तहत गुणवत्ता वाले बीज का उत्पादन करते हैं।
- **राज्य बीज प्रमाणन एजेंसियां** यह उत्पादन एजेंसियों के अनुरोध पर आधार और प्रमाणित बीजों की गुणवत्ता की निगरानी और अनुमोदन के लिए विभिन्न राज्यों में स्थापित राज्य सरकारों के स्वायत्त निकाय हैं। कई राज्यों में, यह जिम्मेदारी राज्य के कृषि विभागों के पास है।

गुणवत्ता नियंत्रण

राज्य बीज प्रमाणन एजेंसियों / उत्पादन एजेंसियों द्वारा उठाए गए गुणवत्ता नियंत्रण उपायों में क्षेत्र निरीक्षण और प्रयोगशाला परीक्षण शामिल हैं। आनुवांशिक शुद्धता सुनिश्चित करने के लिये विभिन्न चरणों में समय–समय पर खेतों का निरिक्षण किया जाता है जिसमें यह देखा जाता है कि न्यूनतम वांछित दूरी पर बुवाई हुयी है कि नहीं, अलग तरह के पौधों को हटाया जाना और आपत्तिजनक खरपतवार पौधों और बीज जनित रोगों से प्रभावित पौधों को हटाया जाता है। बीज की शुद्धता एवं मानकों को बनाये रखने के लिये बीज को राज्य सरकारों के किसी भी अनुमोदित बीज परीक्षण प्रयोगशालाओं में संसाधित / वर्गीकृत बीजों का परीक्षण किया जाता है।

गुणवत्ता वाले चारे के बीज उत्पादन और विपणन के लाभ

किसानों को

- किसानों को उचित मूल्य पर समय पर गुणवत्ता वाले चारे के बीज मिलते हैं।
- गुणवत्ता वाले चारे के बीज से चारा उत्पादन में वृद्धि सुनिश्चित होती है, जिससे दूध उत्पादन में सुधार होता है और चारा लागत भी कम आती है।
- स्थानीय रूप से उत्पादित चारा बीज की बेहतर कृषि–जलवायु उपयुक्तता से चारे की अच्छी पैदावार सुनिश्चित होती है। किसानों को सलाह दी जाती है कि वे केवल उन्हीं बीजों की खरीद करें, जिन्हें उत्पादन के लिए विशिष्ट कृषि जलवायु क्षेत्रों की आवश्यकता होती है।

बीज उगाने वालों को

- चारा बीज के उत्पादन पर प्रीमियम प्राप्त करने के साथ ही उनकी आय में वृद्धि होती है।

उत्पादन एजेंसियों को

- लंबी दूरी के परिवहन को कम करके बीज की लागत को कम करता है।
- गुणवत्तापूर्ण चारा बीज आपूर्ति में आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करता है।
- इस कार्यक्रम से एक छोटे लाभ कमाने में सक्षम बनाता है।

राजभाषा नियम, 1976

नियम 11 :

मैनुअल, संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि–

1. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा।
2. केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्ररूप और शीर्षक हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे।
3. केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगी;
   परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है।

हाइब्रिड नेपियर घास : कम लागत पर वर्षभर हरा चारा उत्पादन का साधन

सुरेश चन्द्र शर्मा, बनवारी लाल, लीला राम गुर्जर व रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

पशु पोषण की आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा उत्पादन की लागत को कम करने में हरे चारे का एक विशेष महत्व है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2020 में हरे एवं सूखे चारे की उपलब्धता उसकी मांग से क्रमशः 64.21 व 24.81 प्रतिशत कम रहेगी। वर्तमान में हरे चारे की माँग एवं आपूर्ति के इस अन्तर को पाटने, चारा उत्पादन की लागत को कम करने तथा वर्षभर हरे चारे की उपलब्धता बनाये रखने के लिये पारम्परिक चारा फसलों के साथ–साथ बहुवर्षीय हरे चारे की खेती भी करना आवश्यक है। संकर नेपियर घास की खेती इस क्रम में एक अच्छा विकल्प हो सकता है, जिससे अन्य चारा फसलों की अपेक्षा कई गुना हरा चारा मिलता है। साथ ही इसकी खेती से 4–5 वर्षों तक बुवाई पर होने वाले व्यय की भी बचत होती है।

नेपियर घास का जन्म स्थान अफ्रीका का जिम्बाबवे देश बताया जाता है यह बहुत ही तेज बढ़ने वाली पौष्टिक चारा घास है इसलिए इसे हाथी घास भी कहा जाता है। इसका नेपियर नाम, कर्नल नेपियर (रोडेसियन कृषि विभाग, रोडेसिया) के नाम पर पड़ा। सबसे पहली नेपियर हाईब्रिड घास अफ्रीका में बनाई गयी। इसे चारे के रूप में बहुत तेजी से अपनाया जा रहा है। भारत में यह घास 1912 में आई। भारत में प्रथम बाजरा–नेपियर हाईब्रिड घास कोयम्बटूर, तमिलनाडू (1953) में और फिर नयी दिल्ली में 1962 में बनाई गयी। कोयम्बटुर के हाईब्रिड का नाम कोम्बूनेपियर और नयी दिल्ली में बनाये गए पहले हाईब्रिड का नाम पूसाजियंत नेपियर रखा गया। इससे पूरे वर्ष 6–8 कटाईयों द्वारा हरा जायंट चारा प्राप्त किया जा सकता है। एक बार लगाने के बाद यह घास 3–4 वर्षों तक हरा चारा देती रहती है एवं कम उत्पादन की स्थिति में, इसे पुनः खोदकर लगा दिया जाता है।

संकर नेपियर घास एक बहुवर्षीय चारा फसल है एक बार बोने पर 4–5 वर्ष तक सफलतापूर्वक हरा चारा उत्पादन करती है। यह तीव्र वृद्धि, शीघ्रपुनर्वृद्धि, अत्यधिक कल्ले, अत्यधिक पत्तियों आदि गुणों के साथ–साथ 2000 से 2500 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष तक हरा चारा उत्पादन देने में सक्षम है। यह 40 दिन में 4–5 फुट उँची हो जाती है तथा इस अवस्था पर इसका पूरा तना व पत्तियां हरे रहते हैं जिसके कारण यह रसीली तथा सुपाच्य होती है और पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं।

नेपियर घास पानी व पोषक की मांग कम होने के कारण खाली पड़े स्थान, पड़त भूमि, एकल फसली खेती के बाद खाली पड़े खेत सभी जगह उगाई जा सकती है। यह भूमि संरक्षण के लिए उपयुक्त बहुवर्षीय चारा फसल है। करीब आधा बीघा भूमि में इस घास को लगाने से 4–5 पशुओं को पूरे वर्ष हरा चारा उपलब्ध करा सकते हैं इस घास के खेतों में रोपाई के बाद करीब डेढ से 2 माह में हरा चारा उपलब्ध कराना शुरू कर देती है।

पोषक तत्व

संकर नेपियर घास में क्रूड प्रोटीन 8–10 प्रतिशत, कॉर्बोहाड्रेड 35–45 प्रतिशत, क्रूड रेशा लगभग 30 प्रतिशत और कैल्शियम 0.5– 0.8 प्रतिशत, शुष्क पदार्थ 16–20 प्रतिशत, पाचक क्षमता लगभग 60 प्रतिशत और ऑक्सालेट 2.5–3.0 प्रतिशत तक होता है। इसके चारे को दलहनी चारे के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाना चाहिए।

मृदा एवं जलवायु

हाईब्रिड नेपियर घास गर्म मौसम की फसल है और इसकी तेजी से बढवार के लिए उपयुक्त तापमान 31 डिग्री सेंटीग्रेड होना चाहिए और 15 डिग्री सेंटीग्रेड से कम तापमान होने पर इसकी बढवार कम हो जाती है। बढ़वार के लिए हल्की वर्षा फिर चमकीली धूप अच्छी रहती है। उत्तर भारत में दिसम्बर व जनवरी माह को छोड़कर शेष महीनों में तीव्र वृद्धि करती है। संकर नेपियर घास का उत्पादन सभी तरह की मिट्टियो में हो सकता है किन्तु इस फसल की अधिक उपज के लिए अच्छे जल निकास वाली भूमि जैसे दोमट, बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। इस फसल के लिये सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था होना आवश्यक है। निचले स्थान भूमि जहाँ पर पानी इकट्ठा होता हो इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं मानी जाती है। इसे 5–8 तक पी एच तक की मिट्टियों में उगाया जा सकता है।

खेत की तैयारी

बुवाई के लिए खेत को अच्छी तरह से तैयार करना चाहिए। एक गहरी जुताई हैरो या मिट्टी पलट हल से करने के बाद बखर द्वारा खेत को भुरभुरा बनायें। अन्त में पाटा चलाकर समतल करें, ताकि पानी का ठहराव न हो सके। यदि खेत में अधिक खरपतवार हो तो, खेत की तैयारी के लिए, एक क्रोस जुताई, हेरो से करने के पश्चात एक क्रोस जुताई कल्टीवेटर से करना उचित रहता है। फसल को कुंड और मेड़ विधि से लगाने के लिए उचित दूरी पर मेड़ बनाना चाहिए । रिज मेकर से 60 सेमी. से 100 सेमी. की दूरी पर मेड़ बना लेते हैं। मेड़ों की ऊँचाई लगभग 25 सेमी. रखते हैं।

उन्नत प्रजातियाँ

पूसा जाइंट नेपियर, यशवंत, आई जी एफ आर आई–6, आई जी एफ आर आई–10,डी एच एन–6, सी ओ–3, सी ओ–4, सी ओ–5, यशवंत, स्वातिका (हाईब्रिडनेपियर–3) इत्यादि प्रजातियाँ अधिक उत्पादन के लिए संस्तुत हैं।

बुआई का समय

वर्षा का मौसम, संकर नेपियर की जड़ों या तनों के लगाने के लिए सबसे उपयुक्त होता है क्योंकि इस मौसम में बढवार बहुत तेजी से होती है और पानी उपलब्धता के कारण सिंचाई की भी कम आवश्यकता पड़ती है। इसलिये इसकी बुवाई जून–जुलाई माह में करते हैं। यदि सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो, तो इसका रोपण 15 फरवरी से सितम्बर माह के अन्त तक किया जा सकता है।

बुबाई की विधि और दूरी

इसकी बुवाई के लिये नेपियर घास की जड़ों या तने की कटिंग को काम मे लेते हैं। तने की कटिंग कम से कम 3–4 महीने पुराना होना चाहिए। दो गांठ की कटिंग लेना उचित रहता है। तने की कटिंग इस प्रकार तैयार करते हैं कि उसमें दो गांठ हों। एक गांठ को मिट्टी में दबा देते हैं तथा दूसरी गांठ को ऊपर रखते हैं। 60 से 100 सेमी. की दूरी पर 25 से.मी. उँची बनी मेढ़ों पर मेढ़ के दोनों तरफ दो–तिहाई ऊंचाई पर जिग–जैग रूप से संकर नेपियर घास की जड़ों या तने की कटिंग को 60 सेमीं. की दूरी पर लगाकर, आधार पर अच्छी तरह दबा देते हैं। उसे 2/3 सेमी में गाढ़ देना चाहिए । कटिंग को थोड़ा तिरछा करके इस प्रकार लगाते हैं कि कटे भाग को सीधी धूप से बचाया जा सके। रोपण के तुरन्त बाद खेत में पानी लगा देते हैं। जमींन के भीतर वाली गाँठ से जड़ और तने निकलते हैं और जमींन के ऊपर वाली जड़ से तने निकलते हैं। अधिक चारा उत्पादन के लिए, लाइन से लाइन की दूरी 60 सेमी और पौधे से पौधे की दूरी 50 सेमी रखनी चाहिए। अन्य फसलों को बीच

में बोने के लिए लाइन से लाइन की दूरी बढ़ा सकते हैं जैसे 100 सेमी. 200 सेमी और 250 सेमी.। इससे दो लाइन के बीच में फसल को भी लगा सकते हैं। विभिन्न प्रकार की दलहनी चारा फसलें जैसे लोबिया, ग्वार, बरसीम, रिजका इत्यादि भी इसके दो लाइन के बीच में उगा सकते हैं।

जड़ों और तनों की संख्या

जब लाइन से लाइन की दूरी 60 से.मी और पौधे की दूरी 50 से.मी रखते हैं तब 34000 जड़ें या तने की कटिंग पर्याप्त होती है और जब पौधे से पौधे की दूरी 50 से.मी और लाइन से लाइन की दूरी भी 50 से.मी रखते हैं तब 40000 जड़ें प्रति हेक्टेयर जरूरत पड़ती है।

खाद और उर्वरक

बहुवर्षीय फसल होने के कारण हाईब्रिड नेपियर की फसल से अधिक चारा उत्पादन के लिए 125–150 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय खेत में मिलायें। बुआई के समय 50 किलोग्राम नाईट्रोजन, 50 किलोग्राम फॉस्फोरस और 40 किलोग्राम पोटाश बुआई के समय डालें और 50 किलोग्राम नाईट्रोजन प्रत्येक कटाई के बाद देना चाहिए। प्रत्येक कटाई के बाद 10 किलोग्राम फॉस्फोरस भी देना उचित रहता है।

निराई–गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण, उत्पादन को बढ़ाने में अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। नेपियर घास रोपने के 15 से 20 दिन बाद अंधी गुड़ाई करना चाहिए। प्रत्येक कटाई के बाद दो कतारों के बीच देशी हल या कल्टीवेटर द्वारा गुड़ाई करने से भूमि की जल धारण क्षमता में वृद्धि होने के साथ–साथ खरपतवार की समस्या नहीं रहती है और फसल की बढ़वार अच्छी होती है। साथ ही रोपण के 30 दिन के भीतर मेढ़ पर भी निराई–गुड़ाई करके घास निकाल देनी चाहिये। इसी समय खाली स्थानों पर नई कटिंग लगाकर गैप फिलिंग भी कर देनी चाहिये। निराई के लिए हैण्ड हो का प्रयोग श्रम की काफी बचत करता है। एक बार फसल के बड़े होने पर खरपतवार आसानी से नहीं आती है। रसायन द्वारा भी खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारो के नियंत्रण के लिए 2,4–डी की 1 किलो सक्रिय तत्व, प्रति हे. 500–600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कना चाहिए।

सिंचाई प्रबन्धन

संकर नेपियर एक सिंचित फसल है। समय पर सिंचाई करने से इसमें बढवार तेज होती है। पहली सिंचाई रोपण के तुरन्त बाद तथा इसके तीन दिन पश्चात दूसरी सिंचाई अवश्य करनी चाहिये। इसके पश्चात मौसम के अनुसार गर्मियों में मार्च से जून तक फसल की सिंचाई 8–10 दिन के अन्तर पर करनी चाहिए। सर्दी के मौसम में फसल को 15–20 दिन के अन्तर पर पानी देना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कटाई के बाद पानी देना आवश्यक है। पानी भरे खेतों में पौधे मर जाते हैं। अतः खेत में जल निकास का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

कीट व रोग नियंत्रण

समय पर एवं उचित ऊँचाई पर फसल को काटने पर कीट और रोग का प्रभाव कम होता है। एक ही प्रक्षेत्र पर अधिक समय तक फसल लेने से पत्तियों पर बादामी दाग (लीफस्पॉट) से पड़ने लगते हैं। इसकी रोकधाम के लिए मेन्कोजेब की 2 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई एवं उपज

वर्षा के मौसम में फसल की बढवार तेजी से होती है और फसल जल्दी से तैयार हो जाती है। जब फसल 5 फीट (1.5 मीटर) की हो जाये तब पहली कटाई करनी चाहिए। सामान्यतः नेपियर घास प्रथम कटाई बुवाई के लगभग 70 दिन पश्चात तैयार हो जाती है तथा इसके बाद 35–45 दिन के अन्तराल से अन्य कटाईयाँ करनी चाहिए। फसल को जमींन से 12 से 15 सेमी ऊपर से काटना चाहिये। इससे बढवार तेज होती है। सर्दियों के बाद पहली कटाई जमींन के पास से काटना चाहिए जिससे खराब तने हट जाते हैं। नेपियर के एक पौधे में पहली कटिंग से पहले लगभग 15 कल्ले निकलते हैं तथा पहली कटिंग के पश्चात 50 से अधिक कल्ले निकलते हैं। इस घास को 1 से 1.5 मीटर की ऊँचाई से ज्यादा बढ़ने से पहले ही काट देना चाहिए अन्यथा पौधे के तने सख्त, अधिक रेशेदार हो जाते हैं, जो पशु कम खाते हैं।

उत्तर भारत में हाईब्रिड नेपियर घास से एक वर्ष में 6 से 7 कटाई तक ली जा सकती है और दक्षिण भारत में 7 से 8 कटाई तक ली जा सकती है। नेपियर की प्रत्येक कटाई से 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हरा चारा प्राप्त हो जाता है। एक वर्ष में कुल 2000 क्विंटल से 2500 क्विंटल तक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। इसके साथ बीच के खाली स्थान में मौसम अनुसार लोबिया या बरसीम की अन्तःफसली खेती करके अधिक उत्पादन, उत्तम गुणवत्ता का हरा चारा प्राप्त करने के साथ–साथ मृदा की उत्पादकता को भी बनाये रखा जा सकता है। एक बार लगाई गयी फसल को 4 से 5 वर्ष तक आसानी से काट सकते हैं। इसके बाद चारा उत्पादन कम हो जाता है तब इन पौधों को उखाड़ कर दोबारा रोपाई करनी चाहिए।

हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान

(a) यदि किसी कर्मचारी ने –

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है; या

(ii) केन्द्रीय सरकार की हिन्दी परीक्षा योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अंतर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है; वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है; या

(iii) केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है; या

(b) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है; तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

भेड़ का दूध : बदलते परिवेश में आमदनी का नया स्त्रोत

राघवेन्द्र सिंह, अर्पिता महापात्रा एवं विजय कुमार

आजकल तेजी से विकसित हो रहे खान–पान, रहन–सहन के आधुनिक जीवन शैली से मानव जीवन शैली में महत्वपूर्ण बदलाव अनगिनत बीमारियों का कारण बनता जा रहा है। दवाईयों के नकारात्मक प्रभाव और स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण आज का मानव समाज पुनः प्राकृतिक एवं सम्पूर्ण गुणवत्तायुक्त आहार को प्राथमिकता देने लगा है। पिछले कुछ समय में हमारे खान–पान और रहन–सहन में तेजी से बदलाव आये हैं। जीवन शैली में आये यह बदलाव और अनगिनत बीमारियों का कारण बन रहे हैं।

गुणवत्तायुक्त आहार में दूध को एक आदर्श भोजन एवं पूरक आहार के रूप में माना जाता है। यह मानव के लिए प्रचुर मात्रा में पोषक तत्वों से युक्त सस्ता एवं सुलभ आहार है। दूध न केवल नवजात बच्चे के लिए बल्कि बड़े–बूढ़े, वयस्क और स्त्रियों के लिए भी अत्यंत फायदेमन्द है। और इसकी पोषक क्षमता एवं गुणवत्ता वैज्ञानिक दृष्टि से भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित है। आज भारत दूध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है। आमतौर पर भारत में गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं कुछ स्थानों पर याक एवं ऊँटनी से भी दूध प्राप्त किया जाता है। गैर–गोजातीय स्त्रोत से दूध और दूध उत्पाद उन स्थानों पर मानव पोषण के लिए महत्वपूर्ण हैं जहां गाय का दूध या तो आसानी से उपलब्ध नहीं है अथवा महंगा है। भेड़ के दूध का उपयोग घुमंतू जातियों, रबारी, राइका व भेड़ पालकों द्वारा औषधीय रूप में भी प्रयोग किया जाता है। भारतीय नस्ल की भेड़ों में पाटनवाड़ी तथा मालपुरा से क्रमशः 60 किग्रा एवं 80 किग्रा दूध प्रति ब्यांत तथा प्रतिदिन 700 से 1000 ग्राम तक दूध उत्पादन की क्षमता होती है।

भेड़ का दूध दूसरे दूधारू जानवरों की तुलना में दो से तीन गुण अधिक ऊर्जा देता है तथा इससे 5932 किलो जूल/किग्रा ऊर्जा प्राप्त हो सकती है, जिसकी वजह से एथलीट इसको पसन्द करते हैं। यह व्हे प्रोटीन (1.002 ग्रा/100 ग्रा) का प्रचुर स्त्रोत है एवं केसीन (4.18 ग्रा/100 ग्रा), कुल वसा (5–7 प्रतिशत), कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयन एवं मैगनिशियम भी अच्छी मात्रा में (193, 158, 0.08 एवं 18 मिग्रा/100 ग्रा) पाये जाते हैं तथा विटामिन बी1, बी2, बी6, बी12, सी, डी एवं ई प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होते हैं जो कि विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के संतुलन में मद्द करते हैं। वसा की मात्रा गाय व बकरी से दुगुनी होती है तथा इसमें छोटे और मध्यम श्रृखंला वाले वसीय अम्लों की मात्रा तुलनात्मक रूप से ज्यादा होती है और वसा की गोलिकाएं भी छोटे आकार की होती है। इस कारण यह आसानी से हजम हो जाती है विशेषकर व्युटारिक अम्ल, कन्जूगेटिड लिनोलिक अम्ल व ओमेगा 3 अम्ल अन्य जुगाली करने वाले पशुओं की तुलना में अधिक होते हैं, जो कि स्वास्थ्य की दृष्टि से दूध के औषधीय महत्व में अहम भूमिका निभाते हैं। प्रोटीन भी दूसरे जानवरों से ज्यादा मात्रा में मिलता है जो शरीर के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह प्रोटीन जब हमारे शरीर के पाचक तत्वों द्वारा छोटे टुकड़ों में विभाजित हो जाता है तो वह पैप्टाईड कहलाते हैं, भेड़ के दूध से जो पैप्टाईड बनते हैं वे विभिन्न रोगों की रोकथाम में मदद करते हैं। व्हे प्रोटीन का श्रेष्ठ स्त्रोत हैं। गाय की तुलना में भेड़ के दूध की केसिन प्रोटीन में विविधता के कारण यह कम एर्लजिक होता है।

आजकल स्वास्थ्य चुनौतियां जैसे एथिरोस्केलेरोसिस, हृदय रोगों, आर्थराइटिस, अस्थि रोग, मधुमेह एवं कैंसर जैसे रोग समाज के लिये एक अभिशाप हैं। भेड़ के दूध का चिकित्सकीय महत्व आयुर्वेद व किवंदतियों में भी वर्णित किया गया है। इसके दूध में कैल्शियम की प्रचुर मात्रा और विशेष गुणवत्ता के कारण यह नवजातों की अस्थियों की वृद्धि एवं विकास के लिए

अधिक लाभकारी माना गया है। शोध से पता चला है कि भेड़ के दूध के उपयोग से चूहों में ट्रेबेकुलर अस्थि की सतह का घनत्व गाय की तुलना में अधिक होता है।

विटामिन व सूक्ष्म तत्वों के प्रचुर मात्रा में होने से यह दूध असाध्य चरम रोग जैसे एग्जीमा और सोरायसिस में इस्तेमाल होता है। इसमें वसीय अम्ल जैसे कंजुगेटेड लिनोलेइक अम्ल व ओमेगा 3 अम्ल की बहुतायत में मौजूदगी के कारण यह ब्लड प्रेशर, मोटापा, हार्टअटैक जैसी बीमारियों में लाभकारी है। आजकल इसका इस्तेमाल सौन्दर्य उत्पादों जैसे लोशन और क्रीम आदि बनाने में प्रयोग होता है। फ्री रेडिकल्स के प्रति प्रतिरोधक क्षमता के कारण यह त्वचा को स्वस्थ रखता है। इस दूध में प्राकृतिक बायोपेप्टाईड जैसे एन्जियों टेन्सिन कन्वरटिन एंजाइम, एन्टीहाईपरटेन्सीव, इम्युनों मोडूलेटर व एन्टीमाइक्रोवियल के प्रचुर मात्रा में पाया जाने के कारण यह मानव स्वास्थ्य के विभिन्न रोगों में एक औषधी के रूप में उपयोग में लिया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भेड़ के दूध की बहुत मांग है। मेडीटेरियन देशों जैसे स्पेन, ग्रीस, इटली आदि में भेड़ के दूध का ज्यादा प्रचलन से लोगों में उपयुक्त रोग से ग्रसित होने की दर से तुलनात्मक रूप से कम पाई जाती है। प्रीबायोटिक एवं प्रोबायोटिक फोर्मुलेशन के लिए भेड़ का दूध उपयोगी साबित हो रहा है। आजकल भेड़ के दूध को एंटीएजिंग तथा कॉस्मेटिक साबुन बनाने में प्रयुक्त किया जाता है।

विश्व में दूध के कुल उत्पादन का 3.5 प्रतिशत दूध भेड़ या लघुरोमंथी पशुओं के द्वारा प्राप्त है। दुधारू नस्ल की भेड़ों में जैसे इजरायल की असफ, जर्मनी की इस्ट फ्रिजन, फ्रांस की लाकुने, ग्रीस की चोयस, स्पेन की मनचेगा आदि मुख्य हैं। भारतीय नस्लों की भेड़ों के दूध का उत्पादन उसके अपने मेंमने को पालने के लिये ही हो पाता है। एक भेड़ से प्रतिदिन औसतन 600 से 700 मिलीमीटर दूध मिलता है। इसमें मालपुरा व पाटनवाड़ी नस्ल की भेड़ें तुलनात्मक रूप से अधिक दूध देती हैं। एक भेड़ पालक के पास 50 के लगभग भेड़ें हैं तो एक साथ अगर औसतन 20 भेड़ें दूध दे रही हैं तो प्रतिदिन 4 लीटर दूध को दोहन कर विक्रय किया जा सकता है। इस प्रकार से और भेड़ के समूहों से दूध एकत्रित करके उसको विभिन्न प्रकार के उत्पाद जैसे घी, दही, पनीर व चीज आदि उत्पाद बनाये जा सकते हैं। जिनसे औषधीय गुणों के आधार पर बाजार में अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। जैसे कि विश्व प्रसिद्ध महंगे व औषधीय उत्पाद रोकियेफोट, फैटा चीज और योर्गट या दही भेड़ के दूध से बनते हैं।

बदलते परिवेश में व्यावसायिक भेड़ पालन को सफल बनाने के लिये ऊन, मांस के अलावा भेड़ के दूध के औषधीय गुणों के आधार पर आकलन करते हुए बाजार में स्थापित करना होगा, जिससे दूध व दूध के उत्पादों का उपयोग मानव स्वास्थ्य की विशेष परिस्थितियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। इस प्रकार से बहुत से असाध्य रोगों के रोकथाम में भेड़ का दूध अहम भूमिका निभा सकता है। इस दिशा में संस्थान द्वारा शोध कार्य जारी है। जिसमें दुधारू भेड़ की नस्ल सुधार व दूध के औषणीय गुणों का अध्ययन मुख्य है।

शुष्क क्षेत्रों में हरे चारे का विकल्प : चुकंदर घास

रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, आर्तबन्धु साहू, सुरेश चन्द्र शर्मा, बनवारी लाल एवं तरूण जैन

चारा चुकंदर (फोडर बीट) का उत्पादन फ्रांस, ब्रिटेन, नीदरलैंड, न्यूजीलैंड, बेलारूस आदि देशों में चारे के रूप में बहुतायत से किया जाता है। पश्चिमी राजस्थान एवं जहां पानी की उपलब्धता कम है या पानी खारा है वहां पशुओं के लिए हरे चारे के उत्पादन का संकट रहता है। जिसे 'चारा चुकंदर' (फोडर बीट) की बुवाई कर हरा चारा प्राप्त कर दूर किया जा सकता है। यह अत्यधिक उपज देने वाली जमीकंदीय फसल है। अन्य चारा फसलों की तुलना में यह कम क्षेत्रफल व कम समय में अधिक उत्पादन देती है।

इसमें शर्करा की मात्रा चुकंदर (शुगर बीट) की तुलना में कम होती है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज तत्व एवं विटामिन जैसे पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इस फसल से हरे चारे के उत्पादन के लिए कम पानी की जरूरत होती है और खारे पानी में भी इसकी अच्छी उपज ली जा सकती है। खेत में चारा चुकंदर के कंद का औसत वजन 4 किलो है। इस चुकंदर चारे का स्वाद खट्टा और मीठा होता है। इससे पशुओं में दूध उत्पादन की क्षमता बढ़ जाती है जिससे उनके बछड़े भी हृष्ट–पुष्ट होते हैं और भेड़–बकरियों द्वारा इसे खाने से दूध उत्पादन के साथ–साथ उनका वजन भी बढ़ता है। खेतों में अक्टूबर में चुकंदर घास की बुवाई करने के बाद जनवरी और फरवरी में यह घास तैयार हो जाती है। इस बीच आमतौर पर फरवरी से अप्रैल तक पशुओं के लिए हरे चारे की व्यवस्था नहीं होती है। इस अवधि में चारा चुकन्दर हरी घास का विकल्प बन सकती है।

भूमि का चयन व खेत की तैयारी

चारा चुकंदर से चारा उत्पादन के लिए दोमट व बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम है। किन्तु इसे किसी भी प्रकार की भूमि में लगाया जा सकता है। भूमि व पानी के खारेपन का भी इस फसल पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि इसके लगाने से भूमि में क्षार की मात्रा कम होती है और यह भूमि सुधारक का कार्य भी करती है। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल या डिस्क हैरो से गहरी जुताई करते हैं। फिर क्रोस हैरो कर कल्टीवेटर के साथ पाटा लगा दें। इसके बाद बंड मेकर या अन्य साधन द्वारा 50 से 70 से.मी. की दूरी पर 15 से.मी. ऊँची डोलियाँ बनाते हैं।

उन्नत किस्में

बाजार में उपलब्ध संकर किस्में : जे.के. कुबेरमोनरो, जोना, जामोन, स्प्लेंडिड ।

बुवाई

बुवाई कार्य हेतु सर्व प्रथम रिजमेकर या अन्य साधन से 50–60 से.मी. की दूरी पर 15 से.मी. ऊँची डोलियाँ बनाते हैं। चारा चुकंदर की बुवाई डोलियों पर करनी चाहिये क्योंकि डोलियों पर बुवाई करने से समतल पर बुवाई की अपेक्षा अधिक उपज प्राप्त होती है, साथ ही इससे बनने वाली नालियों को सिंचाई करने के काम में लिया जाता है जिससे 20 से 25 प्रतिशत पानी की भी बचत हो जाती है। चारा चुकंदर की फसल से अधिक उत्पादन के लिए लगभग एक लाख पौधे प्रति हैक्टेयर होने चाहिए जिसके लिए 2.0 से 2.5 किलो प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। बीज को डोलियों पर 15 से 20 से.मी. की दूरी पर 2 – 4 से.मी. गहराई पर लगाना चाहिये। बुवाई से पहले बीज को बावेस्टीन व थाईरम दोनों को 2 – 2 ग्राम प्रति

किलो बीज की दर से उपचारित करके ही बुवाई करें। बुवाई करने के तुरंत बाद सिंचाई करें किन्तु यह ध्यान रखना है कि पानी डोली के ऊपर तक न आने पाए और सिर्फ नालियों में ही रहे अन्यथा पपड़ी आने से बीज का अंकुर बाहर नहीं निकल पायेगा। इसकी बुवाई अक्टूबर से दिसम्बर तक कभी भी की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक

खेत में हर तीसरे वर्ष खेत की तैयारी के समय 20–25 टन प्रति हैक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद डालें। इसके अलावा प्रति वर्ष नत्रजन 150 किलो, फॉस्फोरस 60 किलो व पोटाश 60 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से उर्वरक दें। नत्रजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय तथा शेष आधी मात्रा नत्रजन को दो बराबर हिस्सों में बुवाई के 30 व 50 दिन पर निराई के पश्चात् देना चाहिये। यदि मिट्टी में सल्फर व जिंक की कमी हो तो 30 व 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि की तैयारी के समय ही मिट्टी में मिला दें। बुवाई के 50 एवं 70 दिन बाद 1 किग्रा/हैक्टेयर की दर से बोरान के घोल को पत्तियों पर छिड़काव करना चाहिये।

निराई–गुड़ाई

फोडर बीट की अधिकतर किस्में मल्टीजर्म हैं यानि बीज से एक से अधिक पौधे भी निकल सकते हैं। इसलिए अंकुरण के बीस दिन बाद पौधे से पौधे के बीच की दूरी 20 से.मी. रखें व फालतू पौधों को उखाड़ दें। चूँकि इस फसल की प्रारम्भ में बढवार बहुत धीरे होती है, इसलिए बुवाई के 30–50 दिनों के बाद निराई–गुड़ाई कर खेत में उगने वाले अनावश्यक पौधों को खोद कर निकाल दें। बुवाई के 50 दिन बाद या आवश्यकतानुसार डोलियों पर मिट्टी चढ़ाना चाहिये जिससे कंद की मोटाई बढ़ सके।

सिंचाई

प्रथम सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद व मार्च तक 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें। तत्पश्चात आवश्यकतानुसार 8 से 10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें।

रोग एवं कीट नियंत्रण

वैसे तो इस फसल में रोग व कीड़े ही कम लगते हैं किन्तु जड़ (स्क्लरोटियम सेल्फ्सी) व पत्तों को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों का कुछ प्रकोप हो सकता है। जड़ गलन की रोकथाम हेतु ट्राईकोडर्मा विरडी 1.25 ग्राम या मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। पत्ते खाने वाले कीड़ों का आर्थिक स्तर तक नुकसान पहुँचने पर 5 प्रतिशत नीम के बीजों की खली के घोल का छिड़काव करें।

कटाई व खुदाई

चारा चुकंदर के कंदों की खुदाई से 40 से 50 दिन पहले पत्तियों को 2 से 3 इंच ऊपर से काट लें व पशुओं को चारे के रूप में खिलाएं। इसके पश्चात् फसल को सिंचाई के वक्त 25 किलो प्रति हैक्टेयर नत्रजन दें जिससे फसल तेजी से बढ़ेगी। जब नीचे की पत्तियां सूखने लग जाएँ व अन्य पीली पड़ने लग जाएँ तब इसके कंदों को खोद लें। यह फसल 120 दिन में तैयार हो जाती है किन्तु इसकी जड़ें जमीन में खराब नहीं होती। इसलिए खुदाई में जल्दीबाजी न करें व मार्च से ही रोजाना आवश्यकतानुसार कंदों को निकालकर पशुओं को खिलाते रहें। खुदाई के वक्त ध्यान रहे कि कंदों की बाहरी परत को नुकसान न पहुंचे।

फोडर बीट खिलाने की विधि

पत्तों व कन्दों को धो कर साफ कर लें और छोटे–छोटे टुकड़ों (3 से 5 से.मी.) में काटकर पशुओं को सीधे खिलाएं। एक पूर्ण व्यस्क डेरी वाले पशु को धीरे–धीरे मात्रा बढ़ाते हुए 10 से 15 किलोग्राम (कन्द व हरे पत्ते) प्रतिदिन के हिसाब से खिलाएं। अधिक मात्रा में खिलाने से पशुओं में आफरा आ सकता है। भेड़–बकरी के लिए 4–7 किलोग्राम प्रति पशु उपयुक्त है। जिन दिनों पशुओं को फोडर बीट खिला रहे हैं उन दिनों इन्हें दिए जाने वाले बांटे (दाने) की मात्रा आधी की जा सकती है। फोडर बीट को काटकर धूप में सुखाकर भंडारित भी किया जा सकता है। बाद में इसे दाना (चोकर, चूरी, खली आदि) के साथ मिलाकर खिलाएं या साइलेज तैयार कर आवश्यकतानुसार पशुओं को खिलाया जा सकता।

उपज

उपरोक्त वर्णित कृषि क्रियाओं को अपनाकर अक्टूबर में चुकंदर घास की बुवाई करने के बाद जनवरी और फरवरी में यह घास तैयार हो जाती है। एक हैक्टेयर जमीन पर 70 टन से 120 टन प्रति हेक्टेयर चुकंदर की घास की पैदावार हो सकती है। प्रति कन्द का वजन डेढ़ से साढ़े तीन किलो तक होता है किन्तु इससे भी अधिक मोटे कन्द प्राप्त हो सकते हैं। इस फसल से 40 से 50 पैसे प्रति किलो लागत पर अत्यंत पौष्टिक चारा उपलब्ध हो जाता है। बाजार में सामान्य घास पर प्रति किलो 5 रुपया लागत आती है।

राजभाषा अधिनियम, 1963

धारा 3 (3) :

उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी हिन्दी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही–

(i) संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कम्पनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं ;

(ii) संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज–पत्रों के लिए ;

(iii) केन्द्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कम्पनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा–प्ररूपों के लिए, प्रयोग में लाई जाएगी।

चरागाह हेतु गुणवत्तायुक्त घास एवं फलीदार चारा

रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, सुरेश चन्द्र शर्मा, आर्तबन्धु साहू, बनवारी लाल एवं तरूण जैन

बढ़ती मानव आबादी के मद्देनजर, चारे की खेती हेतु भूमि दिनों–दिन घटती जा रही है और इस तरह पशु उत्पादन पर एक बड़ा दबाव बन रहा है। इससे पौष्टिक चारे की आवश्यकता और उपलब्धता के बीच एक व्यापक अंतर हो गया है (सारणी–1)। उपलब्ध चरागाहों से प्राप्त चारा आवश्यकता का केवल 47% ही मिल पा रहा है । इस कमी को उपलब्ध चरागाहों के उचित प्रबन्धन तथा बेकार पड़ी बंजर भूमि पर घास और बारहमासी फलियां उगा कर अच्छी गुणवत्ता वाला चारा उत्पादन प्राप्त कर पूरा किया जा सकता है, जिससे पशुधन के लिए अच्छी गुणवत्ता वाला चारा उत्पादन करने के साथ साथ पशुओं के लिये सूखे व हरे चारे की आपूर्ति में भी सुधार किया जा सकता है। बारहमासी फलियां उगा कर, उत्पादन किये गये हरे चारे पर भी दबाव कम किया जा सकता है जैसे कि बरसीम, रिजका, मक्का, ज्वार, बाजरा, जई, लोबिया आदि।

तालिका 1: हरे और सूखे चारे की उपलब्धता और आवश्यकता

क्र.सं.	उपलब्धता	मीट्रिक टन	उपलब्धता	मीट्रिक टन
1.	हरा चारा	370	हरा चारा	1135
2.	फसल अवशेषों से सूखा चारा	350	फसल अवशेषों से सूखा चारा	950
3.	सूखी घास	250	सूखी घास	650
4.	पेड़ों से पत्ती चारा	14	पेड़ों से पत्ती चारा	34
5.	गन्ना सबसे ऊपर	04	–	–

अ) घासें

अंजन घास (*Cenchrus ciliaris*)

इसे बफेल घास के रूप में भी जाना जाता है। अंजन घास भारत के शुष्क तथा अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की प्रमुख चरागाह प्रजातियों में से एक है। यह रेतीली, सिल्ट या पथरीली मिट्टी में भी हो जाता है। यह सूखा प्रतिरोधी, सख्त व बारहमासी चारा प्रजाति है जो सभी प्रकार के पशुधन के लिए पोषक और स्वादिष्ट है। इसको अन्य चारे के साथ पोषण के लिए भेड़ और बकरियों को भी आसानी से खिलाया जा सकता है। अंजन घास एक महत्वपूर्ण बारहमासी घास है। यह मानसून में सबसे अच्छी वृद्धि करता है। यह सूखे का सामना कर सकता है और उष्णकटिबंधीय और उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों एवं गर्म शुष्क क्षेत्रों के लिए एक उत्कृष्ट चराई वाली घास है। यह मिट्टी को अच्छी तरह बांधने का कार्य भी करती है इसलिए मिट्टी और जल संरक्षण के लिए एक कवर फसल के रूप में उपयोग किया जाता है। वर्षा अनुसार इसकी उपज बहुत भिन्न होती है और 300 मिमी से कम वर्षा वाले शुष्क क्षेत्रों में एक अच्छी तरह से स्थापित चरागाह 9–11 टन/हेक्टेयर चारा पैदा करता है।

धामण (*Cenchrus setigerus*)

धामण घास अर्ध–शुष्क और शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली एक प्रमुख सेक्रंस प्रजाति है, जो गरम एवं अर्द्ध नम जलवायु में अच्छी तरह से बढ़ता है। यह अंजन घास से कठोर है और सूखा प्रतिरोधी भी होती है। इसकी पाचनशीलता और

पोषकता अंजन घास जितनी ही है। धामन घास भारत के लिए स्वदेशी है और लंबे शुष्क मौसम के साथ शुष्क और अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय जलवायु के अनुकूल है। यह सूखे के प्रति बहुत सहिष्णु है और वार्षिक वर्षा क्षेत्रों में 200 मिमी तक या इससे भी कम हो वहाँ पर भी चरागाह भूमि के सुधार के लिए उत्कृष्ट है। यह यह एक पत्तेदार चारा है जो प्रचुर मात्रा में पर्णसमूह प्रदान करता है। यह शुष्क मौसम के साथ शुष्क और अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय जलवायु के अनुकूल है। इसकी पैदावार प्रति हेक्टेयर 3–4 कटिंग में लगभग 8–10 टन चारा प्राप्त किया जा सकता है।

सेवण (*Lasiurus sindicus*)

सेवण घास को सूखे क्षेत्रों में सभी चारों में रेगिस्तान का राजा कहा जाता है। यह गर्म व सूखी जलवायु की रेतीली मिट्टी में अच्छा उत्पादन देती है। यह भी अधिक सूखे को सहन करने वाली प्रजाति है जो 10–15 साल की लंबी अवधि तक चराई में टिक सकती है। अधिकांश पशुओं के लिए इसकी पाचनशीलता भी अच्छी है। यह एकमात्र घास है जो रेगिस्तानी स्थिति में बेहतर तरीके से जीवित रह सकती है। 200 मिमी से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों मे भी अच्छी तरह से पनपती है। सेवण घास भारतीय थार रेगिस्तान में पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर और बीकानेर जिलों के अत्यंत शुष्क भागों की प्राथमिक घास है। जैसलमेर के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 80% नचनाना, पश्चिम पुगल, मोहनगढ़, सुल्ताना और बिंजेवाला में 100–150 मिमी वार्षिक वर्षा वाले सेवन घास के मैदानों को कवर करता है। सामान्य वर्षा के वर्षों के दौरान, खेती, उपलब्ध अपशिष्ट, परती और चरागाहों से उपलब्ध चारा मौजूदा पशुधन की आवश्यकता का लगभग दो–तिहाई हिस्सा होता है। इस घास की उपज प्रति वर्ष 4–5 कटाई में लगभग 10 टन चारा प्रति हेक्टेयर होती है।

दीनानाथ घास (*Pennisetum pedicellatum*)

घास के बीच, वार्षिक दीनानाथ घास कट और कैरी–सिस्टम और इन–सीटू चराई दोनों के लिए एक लोकप्रिय चरागाह घास है। हाल ही में दीनानाथ घास की बारहमासी खेती विकसित की गई है, जो अपने हरे–भरे हरे पत्ते के कारण आधार से शीर्ष तक और उच्च पत्ती के कारण भी पशुधन के लिए अत्यधिक उपयोगी है। शुष्क पदार्थ का उत्पादन 2.5 से 3.5 टन/हेक्टेयर तक होता है, साथ ही प्रोटीन की मात्रा 4.5 से 9.5% तक होती है।

नेपियर घास (*Pennisetum purpureum*)

आमतौर पर हाथी घास के रूप में जाना जाता है। यह सभी पशुओं, बकरियों और भेड़ों के लिए में जायकेदार घास है। यह बारहमासी वृद्धि करता है केवल सर्दी के दिनो में इसकी बढ़वार कम होती है, और तेजी से बढ़ने की आदत के कारण इसकी उपज क्षमता अधिक होती है किसी भी प्रकार की भूमि पर किसी भी मौसम में इसकी खेती की जा सकती है। इसको लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में लगाया जा सकता है सिवाय बाढ़ वाली भूमि पर इसके कूंचे नष्ट होने का डर रहता है । हालांकि, यह उपजाऊ दोमट मिट्टी एवं गर्म और नम जलवायु में अच्छी तरह से पनपती है और अधिक उपज देती है। पशु आहार के रूप में, नेपियर घास को एक रिजके या अन्य फलीदार चारों के समकक्ष वर्गीकृत किया जाता है। नेपियर गुणवत्ता में और पोषक तत्वों में सभी अन्य घासों से बेहतर पाया गया है उत्तरी भारत में फरवरी के अंत से अगस्त के अंत तक बोई जाती है। लेकिन उपज के संदर्भ में अधिकतम रिटर्न प्राप्त करने के लिए, फसल को फरवरी के अंत तक बोया जाना चाहिए, क्योंकि देर से बुवाई नवंबर के अंत तक केवल एक कटाई दे सकती है जिसके बाद यह निष्क्रिय अवस्था में रहता है। पहली कटाई रोपण के तीन महीने बाद और उसके बाद हर 50–60 दिनों में तैयार हो जाती है। पूसा विशाल नेपियर की एक शानदार उपज है, लेकिन उपज उस पौधे की ऊंचाई पर निर्भर करती है जिस पर इसे काटा जाता है।

जॉनसन घास (*Sorghum halepense*)

जॉनसन घास जिसे बरू घास या बंचारी के नाम से भी जाना जाता है, भारत की घास के कवर का लगभग 20% हिस्सा एक लंबा, मोटे, गर्म मौसम वाला है। प्री–फ्लावरिंग चरण में इस घास को कुट्टी कर इसका उपयोग पूरी तरह से भेड़ और अन्य जानवरों के लिए चारे के रूप में किया जा सकता है। शुरू में बीज से प्रसारित किया जाता है । वसंत में अच्छी तरह से तैयार बीज बोने चाहिए, जैसे कि दक्षिण में दिसंबर के शुरू में। बीज दर 11–28 किग्रा/हेक्टेयर। ग्लूमेंट को हटाने से में 95% अंकुरण हो जाता है। भूमिगत टीलर द्वारा भी पौधे तैयार किए जा सकते है। अनुकूल परिस्थितियों में, सकर्स में बड़ी मात्रा में भोजन संग्रहीत होता है और मध्यम से गंभीर सर्दियों में जीवित रहने की उनकी क्षमता के माध्यम से बारहमासी जीवित रहता है। एक घास का मैदान स्थापित करने के लिए, बीज प्रसारण या वसंत में या शुरुआती गर्मियों में 20–35 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से बोया जाता है। कभी–कभी मिश्रणों में मीठे तिपतिया घास साथ बोया जाता है। जॉनसॉन्ग्रास मे 1075 किलोग्राम/हेक्टेयर तक एन उर्वरक देने पर 9 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से उत्पादन की वृद्धि हो जाती है। जॉनसन घास के लिए मिट्टी में नाइट्रोजन सामग्री को बढ़ाने के लिए एक फलियां वाले चारे जैसे सेम, क्लाईटोरिया व चौला के साथ भी बुवाई की जाती है।

ब्लू पैनिक (*Panicum antidotale*)

इसे स्थानीय रूप से घमूर, गनारा, बंसी या परवारी कहा जाता है। ब्लू पैनिक एक घास है जिसे किसी भी प्रकार की मिट्टी पर और विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में उगाया जा सकता है। यह एक सीधा, पतला ठोस तने वाला गुच्छेदार बारहमासी घास है, जिसमें मोटे व गाढ़े रंग के नोड्स और नीले हरे रंग के इंटरनोड होते हैं। यह उत्कृष्ट मृदा कणों को बांधकर मृदा कटाव को भी रोकता है। साथ ही सूखा प्रतिरोधी होने के अलावा, मध्यम लवणता को भी सहन करता है और सूखे क्षेत्रों में अपने चारे के मूल्य के लिए जाना जाता है, घास की उपज मिट्टी की स्थिति पर निर्भर करती है, इसकी उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष 4–6 कटाई में 150–250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हरा चारा है। घास में 7.5 प्रतिशत कच्चे प्रोटीन और कैल्शियम और फास्फोरस का संतोषजनक संतुलन होता है। यह एक रखरखाव गुणवत्ता वाला चारा है, जिसमें फूल अवस्था में 8–10% प्रोटीन होता है। रखरखाव राशन होने के अलावा, यह मिट्टी संरक्षण के लिए उत्कृष्ट है। सिंचित परिस्थितियों में, 5–6 कटाई उपलब्ध हैं और चारे की कुल उपज लगभग 40–50 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर है।

गिनी घास (*Panicum maximum*)

यह उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के अनुकूल एक प्रसिद्ध बारहमासी घास है और यह अधिक उपज देने वाली है। यह एक लंबी घनी गुच्छेदार बारहमासी घास है, जिसमें छोटे छोटे कद वाले अंकुर निकलते हैं। एक पूर्ण विकसित पौधा अनुकूल परिस्थितियों में 1.8–2.7 मीटर की ऊंचाई प्राप्त करता है। उपज 4–5 कटाई में लगभग 120–150 टन हरा चारा है। यह आदर्श परिस्थितियों में 8–10% प्रोटीन युक्त रखरखाव गुणवत्ता वाली चारा फसल है। इस घास का प्रसारण तने से निकलने वाले कल्लों, तने के छोटे छोटे टुकड़े काट कर और बीज द्वारा किया जाता है। यह सूखे और नमी वाली स्थितियों के लिए काफी सहनशील है लेकिन सर्दी के लिए अतिसंवेदनशील है। परिपक्व गिनी घास में टीडीएन का मध्यम स्तर होता है पशु का स्वास्थ्य और शरीर के वजन को बनाए रखने के लिए इस तरह के चारे के साथ पूरक मिश्रण आवश्यक है।

(ब) बारहमासी फलियाँ

स्टाइलो (*Stylosanthes hamata*)

स्टाइलो को आमतौर पर स्कोफील्ड के रूप में जाना जाता है। यह ट्राइफोलिएट पत्तियों के साथ अधिक शाखित बारहमासी है। यह विभिन्न जलवायु और मिट्टी की स्थिति में इसकी कठोरता और अनुकूलन क्षमता में उल्लेखनीय है। इसे खराब व पथरीली मिट्टी पर उगाया जा सकता है। दोनों कृषि योग्य खेती और प्राकृतिक घास के मैदानों में, जहां यह सूखे मौसम में भी चराई के लिये उपलब्ध रहता है।यह आसानी से स्थापित हो जाता है। इसमें शुष्क पदार्थ और कुल पाचक पोषक तत्व (टीडीएन) की मात्रा जानवरों की आवश्यकता अनुसार जरूरत के लिए पर्याप्त है लेकिन पाचन क्रूड प्रोटिन (डीसीपी) आवश्यकता से कम पाई जाती है। अध्ययन से पता चला कि स्टाइलो का भूसा पोषण के लिये चारा है जो मेमनों के रखरखाव की जरूरत को पूरा कर सकता है और इसे उत्पादन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उचित मात्रा में या अच्छी गुणवत्ता वाले हरे चारे के साथ मिश्रित किया जाना चाहिए।

सिराट्रो (*Macroptilium atropurpureum*)

सिराट्रो एक बहुत ही महत्वपूर्ण गर्मियों में उगाई जाने वाली फलियां है जिसमें उच्च सूखा प्रतिरोधी और अच्छा स्वादिष्ट पाचकता वाला फलीदार चारा होता है। मिश्रण में सिराट्रो को शामिल करने से शुष्क मौसम के दौरान चारे की गुणवत्ता में काफी वृद्धि होती है। कुछ सिराट्रो जीनोटाइप्स की क्रूड प्रोटीन बरसीम और रिजका के बराबर पाई जाती है। यह वन–चरागाह प्रणाली की एक महत्वपूर्ण फलियां हैं।

तितली मटर (*Clitoria ternatea*)

तितली मटर के लिये औसत तापमान सीमा 19–28°c है। इसकी खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं पर आसानी से की जा सकती है अच्छी पैदावार के लिये उपजाऊ, जमी हुई भारी मिट्टी मिट्टी को प्राथमिकता देते हैं जिसका औसतन पी एच मान 5.5 से 8.9 तक वाली मृदा में अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है। यह एक टेढ़ी–मेढ़ी बेलदार तने वाला, उष्णकटिबंधीय लेग्यूम है। इसके छोटे–छोटे टिलर्स आधार में उप–स्तंभ निकलते हैं और 5 मीटर तक लंबे हो सकते हैं। यह एक बारहमासी चराई की फलियां हैं जो एक बार स्थापित होने पर लंबे समय तक चराई के लिये सक्षम है। इसकी चरागाहों में घास के साथ साथ बुवाई की जाती है जो कि मिट्टी और नमी संरक्षण के दृष्टिकोण से उपयुक्त है जिससे अधिक पौष्टिक चारा प्राप्त किया जा सकता है। यह चरागाह घास के साथ 6–8 वैकल्पिक पंक्तियों में लगाया जा सकता है।

सेम (*Dolichos lablab*)

यह एक द्वि–वार्षिक चारागाह का फलीदार चारा है। इसको मृदा जिसका पी एच मान 4.4 से 7.8 तक हो, में भी आसानी से लगाया जा सकता हैं। एक फलीदार चारा होने के कारण यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन को अवशोषित कर मृदा में 170 किलो/हेक्टेयर की दर से संरक्षित कर सकता है और इसके अलावा जैविक पदार्थों के साथ मिट्टी को समृद्ध करने के लिए पर्याप्त फसल अवशेष छोड़ता है। यह एक सूखा सहन करने वाली फसल है और सीमित वर्षा के साथ शुष्क भूमि में अच्छी तरह से बढ़ता है। यह पौष्टिक और स्वादिष्ट चारा प्रदान करता है। यह चरागाह घास के साथ 6–8 पंक्तियों के वैकल्पिक पंक्तियों में लगाया जा सकता है।

लोबिया (*Vigna unguiculata*)

लोबिया बहुत तेजी से बढ़ने वाली फलियां है, जो फसल के रोटेशन में अच्छी तरह से फिट होती है। यह गर्मी की जलवायु के लिए अनुकूल है और सभी प्रकार की मिट्टी पर उगाया जा सकता है, यदि वे अच्छी तरह से सूखा हो, तो रेतीले लोम से लेकर भारी लोम तक। यह जल भराव की स्थिति के लिए अतिसंवेदनशील है। इसे अकेले या गैर–फलियां जैसे शर्बत और मक्का के साथ बोया जा सकता है। यदि सिंचाई उपलब्ध है, तो यह फसल भारत में फरवरी और मार्च के महीनों में उगाई जा सकती है और फिर हरा चारा मई–जून की महत्वपूर्ण अवधि के दौरान उपलब्ध कराया जा सकता है। वर्षा आधारित फसल के रूप में इसे जुलाई में बोया जाता है। फसल आमतौर पर तीन महीने में तैयार हो जाती है। जब अकेले बुवाई की जाती है, तो यह प्रति हेक्टेयर 200–300 क्विंटल चारा की उपज देती है। एक मिश्रित फसल के रूप में इसकी काफी संभावना है। जब इसे आदर्श फलियां और अनाज के चारे के मिश्रण का उत्पादन करने के लिए मक्का, शर्बत और बाजरा के साथ बोया जाता है। यह देखा गया है कि हरी फली की उपज लगभग 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

फेबा बीन (*Vicia faba*)

ब्रॉड बीन एक सीधा बढ़ने वाला एक वर्षीय फलीदार चारा है जो 2–4 फीट की ऊंचाई तक बढ़ सकता है। पत्तियां एकांतर, पक्षवत् होती हैं जो 8 सेंटीमीटर तक लंबी, सघन होती हैं। पौधे में सफेद–बैंगनी फूल होते हैं। फली आमतौर पर बुवाई से 120 दिनों में परिपक्व होती है। फैबा बीन, एक फलीनुमा पौधा है, जिसे 90–120 दिनों में परिपक्व किया जाता है और इसके बीज में प्रोटीन की मात्रा 23–24% होती है और अच्छी उपज देती है। उचित उपजाऊ मिट्टी में 3.1–4.3 टन/हेक्टेयर)। यह मवेशी, घोड़े, सूअर और भेड़ के लिए एक उच्च पोषक मूल्य वाला चारा है। क्योंकि इसमें सल्फर एमिनो एसिड की कमी होती है अतः जिन पशुओं को यह चारा खिलाया जाता है उनको मेथियोनीन को पूरक आहार के रूप में देना आवश्यक हैं। इसमें कुछ कारक पोषणता में बाधा डालने वाले भी होते हैं जैसे टैनिन, काइसीन और ट्रिप्सिन इनहिबिटर जो ऊर्जा और प्रोटीन की उपलब्धता को सीमित करता है।

तालिका 2: घास की विभिन्न प्रजातियों में पोषक तत्वों की उपलब्धता

घास/रातिब	कार्बनिक पदार्थ	क्रूड प्रोटीन	ईथर एक्सट्रेक्ट	कच्चा रेशा	एनएफई	ऐश	एनडीएफ	एडीएफ
सेन्क्रस घास	97.05	3.70	–	–	–	–	83.31	61.19
गिनी घास	92.57	3.65	1.50	39.13	–	7.49	–	–
सोला घास	93.95	12.95	1.28	25.95	47.83	–	57.55	44.16
पैरा घास	91.73	6.56	0.85	32.25	49.07	8.27	–	–
भाला घास	89.98	4.93	1.44	37.77	45.84	10.02	–	39.90
जॉनसन घास	91.22	10.46	2.70	34.83	43.23	–	–	–

तालिका 3 महत्वपूर्ण घासें और बारहमासी फलियां, उनकी किस्में, बीज दर, उर्वरक और सूखा चारा उपज

चारे का नाम	किस्में	बीजदर	उर्वरक (किलो / हेक्टेयर)		सूखा चारा
			नाईट्रोजन	फॉसफोरस	
अंजन घास	पूसा पीला, पूसा जाइंट, पूसा पुलो, आजीएफआरआई–358, 296, 3108, 3132, 3133, व 75, काजरी–1123	4.0–5.0	40–60	40	3.0
धामण घास	काजरी–76, 175, 413, एस–175, एस –416, एस –412,एस–298	5.0–7.0	40–60	40	3,0
सेवण घास	काजरी–318,319,565, 375, व 365	6.0–8.0	40–60	40	3.5
नेपियर घास	एनबी–21, हाईब्रिड 2, 3 और 6, एनबी –5, 9, गजराज, आजीएफआरआई 3	12–15 क्विंटल् स्लिप्स / हेक्टेयर	120–150	50–60	5.0
ब्लू पैनिक	काजरी–297, 382, 618, आगरा लोकल, चांदपुर लोकल, एस –29, 333, 341	2.0–3.0	50	40	3.0
गिनी घास	हैमिल, मैक्युनी, गैटन, रिवरडेल पी.जी. 1, गिनी बी	2.0–3.0	50	40	4.0
दीनानाथ घास	पीएस–3, आजीएफआरआई–3808, 45–1, जी –73, टी –12	6.0–8.0	40–50	40	3.0
मार्वल घास	एस–32, एस–65, आजीएफआरआई –एस –449–1, आजीएफआरआई –एस –449–2	1.5–2.0	40	40	2.5
बारहमासी फलियाँ					
स्टाइलो	शॉफिल्ड, ऑक्सले, कुक, प्रयासकर्ता, डियोडोरा, डियोडोरो–2, आईआरआई –1022	2.0–3.0	25	40	3.5
तितली मटर	आजीएफआरआई –एस–23, आजीएफआरआई –एस.12	15.0–20.0	20	40	3.0
सेम	बुंदेल सेम–1, जेएलपी–4, जेएलपी–6, सीओ.1, 6, 7, 8, आजीएफआरआई–एस–2214– I I, आजीएफआरआई–एस–2218– I, एचए–1, एचए–3 व सीओ.–11	20.0–25.0	20	20	2.0–2.5

आपदा काल में पशु प्रबन्धन

राज कुमार, बनवारी लाल, रंगलाल मीणा, जे. पांडयान, नरेश प्रसाद[1], इन्दु देवी एवं अरुण कुमार तोमर

आपदा (Disaster) एक ऐसी असामान्य घटना है जो सीमित समय के लिये आती है परन्तु किसी भूभाग या देश की अर्थव्यवस्था को छिन्न भिन्न कर देती है। कोई भी आपदा न तो बताकर आती है और न ही उसकी तीव्रता एवं उससे होने वाले नुकसान का आंकलन पहले से कर सकते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में हालांकि विज्ञान ने कुछ तरक्की जरूर की है जिससे कि कुछ आपदाओं का हम पहले से अनुमान लगा सकते हैं, जैसे – तेज बारिश, आंधी, तूफान, चक्रवात इत्यादि। परन्तु कुछ आपदाओं के बारे में पता लगाने में हम अभी तक असमर्थ हैं, जैसे भूकम्प। आपदा किसी भी तरह की हो उससे जान माल की भारी क्षति होती है। आपदाओं से मनुष्यों, जानवरों, पशु पक्षियों, इमारतों इत्यादि को भारी क्षति होती है।

आपदाओं से होने वाले नुकसान के आधार पर आपदाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्राथमिक आपदायें एवं द्वितीयक आपदायें। प्राथमिक आपदाओं में होने वाली हानि का कारण जल, स्थल एवं वायु होती है। प्राथमिक आपदायें सीधा–सीधा जान, माल को हानि पहुंचाती हैं। आपदाओं की तीव्रता एवं प्रभाव सीधे–सीधे जान व माल को होने वाली हानि को दर्शाता है। जल संबंधी आपदा में वर्षा, बाढ़, समुद्री लहरें एवं सुनामी प्रमुख हैं।

स्थल सम्बन्धी आपदा में भूस्खलन, नदी मार्ग परिवर्तन एवं समुद्री पानी का सतह पर आना इत्यादि शामिल हैं। हमारे देश का 70 प्रतिशत भाग भूकम्पीय क्षेत्र में आता है। इसी प्रकार हमारे देश की कुल खेती योग्य भूमि का 70 प्रतिशत हिस्सा वर्षा आधारित है। इसी प्रकार 12 प्रतिशत बाढ़ उन्मुख एवं 8 प्रतिशत चक्रवात उन्मुख है। ये सभी आंकड़े दिखाते हैं कि हमारे देश का कितना प्रतिशत हिस्सा किसी न किसी आपदा क्षेत्र में आता है। वायु सम्बन्धी आपदाओं में चक्रवात एवं हरीकेन प्रमुख हैं।

द्वितीयक आपदायें वो आपदायें हैं जो प्राथमिक आपदाओं के बाद उत्पन्न होती हैं एवं इनका प्रभाव दीर्घकाल तक अनुभव किया जाता है। इनमें प्रमुख हैं–स्वास्थ्य संबंधी खतरे, खाद्य आपूर्ति में बाधा, आवासीय क्षेत्र का नुकसान, जल आपूर्ति प्रभावित होना, बिजली, सड़क मार्ग इत्यादि का प्रभावित होना शामिल है।

इसके अलावा प्राथमिक आपदाओं को दो अन्य भागों में भी विभाजित किया गया है जो इस प्रकार है:

1. प्राकृतिक आपदायें
2. मानवकृत आपदायें

प्राकृतिक आपदायें – प्राकृतिक आपदायें वे आपदायें हैं जो प्रकृति द्वारा जनित हैं जैसे भूकम्प, बाढ़, चक्रवात, सुनामी, सूखा, इत्यादि।

मानवकृत आपदायें ये वे आपदायें हैं जो मनुष्य के कार्य कलापों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं जैसे, शहरीकरण, औद्योगिकरण से वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, इत्यादि। इसके अलावा इनमें अग्निकाण्ड, युद्ध तथा महामारियां भी शामिल हैं।

भारत सरकार ने सन् 2005 में आपदा प्रबंधन बिल 2005 को लागू किया जिसमें आपदा प्रबन्धन को परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है: आपदा प्रबंधन एक आयोजित, संगठित, समन्वित रूप से निरन्तर कार्य करने की प्रक्रिया है।

आंकड़ों के अनुसार सन् 1992 से 2005 के वर्षों के मध्य पूरे विश्व में प्राकृतिक आपदाओं से प्रतिवर्ष 60,000 लोग मारे गये एवं 20 करोड़ लोगों के घरों, फसलों एवं सम्पत्ति का नुकसान हुआ। इसी प्रकार यदि हम किसी देश विशेष की बात करते

[1] वैज्ञानिक, आई सी ए आर – केन्द्रीय गोवंश अनुसंधान संस्थान, मेरठ

हैं तो 1998 में बांग्लादेश में आयी बाढ़ से लगभग 1.3 अरब डॉलर, 2001 में गुजरात में आये भूकम्प से 3.3 अरब डॉलर एवं 2004 में हिन्द महासागर में आयी सुनामी से लगभग 4.5 अरब डॉलर का नुकसान हुआ था।

आपदा प्रबन्धन में दो तरह की बातों का ध्यान रखा जाता है : आपदा पूर्व गतिविधियां एवं आपदा पश्चात गतिविधियां

आपदा पूर्व गतिविधियां आपदा पूर्व गतिविधियों में आपदा के आने से पूर्व की जाने वाली तैयारियां शामिल हैं जैसे आपदा के आने की सूचना का व्यापक प्रचार प्रसार, आपदा के आने से पहले किए जाने वाले इंतजाम इत्यादि। इसके अंतर्गत आपदा न्यूनीकरण भी आता है, जिसमें आपदा के नुकसान से बचने के लिए योजना बनाओ, पुनरीक्षण करो एवं कार्य करो शामिल हैं।

प्राकृतिक आपदाओं के प्रति अनुक्रिया अनुक्रिया का अर्थ है कि आपदा के घटित होने पर की जाने वाली मानवीय प्रतिक्रिया। यह मुख्य तीन तरह की होती हैः तुरंत राहत, क्षतियों एवं आवश्यकताओं का आकलन एवं आपदा परवर्ती पूर्वावस्था प्रशिक्षण।

आपदा प्रबंधन एवं रिपोर्टिंग किसी भी आपदा की सूचना देना आपदा प्रबंधन का एक अहम हिस्सा है। आपदा रिपोर्ट तीन तरह की हो सकती हैः फ्लेश रिपोर्ट, प्रारम्भिक रिपोर्ट एवं अंतिम रिपोर्ट।

फ्लेश रिपोर्ट फ्लेश रिपोर्ट में केवल यह जानकारी दी जाती है कि क्या आपदा के होने की खबर सही है, या यह केवल एक झूठी खबर मात्र ही है।

प्रारम्भिक रिपोर्ट प्रारम्भिक रिपोर्ट में कम से कम शब्दों में यह बताने की कोशिश की जाती है कि आपदा कितनी भयंकर है एवं इससे जन–माल की कितनी हानि हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रशासन को यह बताना होता है कि आपदा पूर्व किस तरह के एवं कितनी मात्रा में संसाधनों की जरूरत पड़ेगी।

अब हम चर्चा करेंगे कि आपदा के समय भेड़–बकरी (या अन्य पशु) पालन प्रबंधन किस प्रकार करें।

1. **बाढ़**: बाढ़ एक ऐसी आपदा है जिसमें प्रभावित गाँव, कस्बे या शहर में बहुत ज्यादा बरसात या नदी के उफान से अत्यधिक पानी भर जाता है। भारत के कुछ हिस्से प्रायः हर साल बाढ़ के शिकार हो जाते हैं, जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार इत्यादि। केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारें प्रत्येक साल बाढ़ को रोकने के अनेक उपाय करती हैं एवं इसमें वो कुछ हद तक सफल भी रही हैं परंतु फिर भी हम बाढ़ से पूरी तरह से नहीं बच पाएँ हैं। बाढ़ों से बचने एवं बाढ़ के होने वाले नुकसान को करने के लिए हम निम्न उपाय अपना सकते हैंः

बाढ़ आने से पहले के प्रबन्धः किसानों को चाहिए कि वर्षा से पहले पशुओं के बाड़ों को भली भाँति ठीक कर लेवें। बाड़े में कोई भी निची जगह, बाड़े की छत में पानी का रिसाव इत्यादि की जगह की मरम्मत करवा लेवें। अधोवर्णित सभी ऐसे इन्तजाम करके रखें जो बाढ़ आने पर मदद करें।

क्रमांक	संरचनात्मक उपाय	गैर–संरचनात्मक उपाय
1.	तटबंध, पानी भरने वाली जगह की दीवारें ऊंची करना	बाढ़ आने से पूर्व जागरूकता फैलाना, बाढ़ आने से पूर्व इंतजाम करना
2.	बांध बनाना, जलाशय बनाना, वर्षा से पहले बांधों एवं जलाशयों की दीवारों की मरम्मत करवाना	बाढ़ की पूर्व सूचना देना
3.	गाँव की जगह का मुआयना कर पानी की निकासी के उपाय करना	आपदा राहत कार्यों का इंतजाम करना
4.	वर्षा पूर्व पानी की निकासी	जन स्वास्थ्य कार्यों का इंतजाम करना
5.	बाढ़ के जल की दिशा परिवर्तन	दीवारों पर श्लोगनों के माध्यम से जागरूकता फैलाना

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमें बाढ़ पूर्व एवं बाढ़ पश्चात दोनों ही दिशा में कार्य करने होते हैं।

बाढ़ आने पर क्या करें: बाढ़ आने पर आपूर्ति किट की तैयारी रखें जिसमें दवा, डिब्बाबंद भोजन, प्लास्टिक की बोतलों में पानी, बरसाती कपड़े, रेडियो, टॉर्च, बच्चों एवं बूढ़ों के लिए विशेष चीजें इत्यादि। इसके अलावा हमें गैस, बिजली, जल आपूर्ति इत्यादि को बंद करने का ज्ञान भी आना चाहिए। यदि घर या गाँव छोड़ने संबंधी सूचना मिले तो इसके बारे में भी इंतजाम कर लेना चाहिए कि मित्र के घर जाना है, या सगे–संबंधी के घर जाना है। बाढ़ के समय जानवरों को बांध कर नहीं रखना चाहिए। बछड़ों एवं मेमनों का अलग से ध्यान रखना चाहिए। वर्षा से पहले सूखा चारा प्रबंधन पर्याप्त मात्रा में कर लेना चाहिए। बाढ़ के समय पशुओं के चारे प्रबन्धन का विशेष ध्यान रखना चाहिए। बाढ़ के समय महामारी फैलने का भी खतरा रहता है अतः पशुओं को साफ पानी एवं साफ चारा देना चाहिए।

2. **भूकंप प्रबंधन** भूकंप एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जिसमें जमीन के नीचे की सतह के खिसकने से ऊपरी सतह अचानक हिलने लगती है। प्राकृतिक आपदाओं में भूकंप सर्वाधिक विनाशकरी आपदा माना जाता है। इससे भौतिक, सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक तीनों प्रकार की क्षतियाँ होती हैं। भूकंप से दो प्रकार की चुनौतियाँ सामने आती हैं पहली तो इस घटना की कोई अग्रिम सूचना नहीं मिलती, एवं दूसरी क्योंकि भूकंप अनेक सालों के बाद आते हैं, कोई भी सरकार इसके लिए आवश्यक कदम नहीं उठाती है। किसी भी आपदा से उत्पन्न खतरे में कमी लाने के लिए आपदापूर्व उपाय अपनाने होते हैं, किन्तु भूकंप के आने का समय एवं इसकी तीव्रता का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। भूकंप एक ऐसी आपदा है जिसका सामना विकसित देश भी कर पाने में सफल नहीं हो पाये हैं।

भूकंप आने से पूर्व हमें क्या क्या प्रबंध करने चाहिए:

- घर के कमरे में एक सुरक्षित स्थान का चयन करें। यह स्थान मजबूत, आसानी से पहुँच वाला, किसी भी मेज या पलंग के नीचे वाला स्थान हो सकता है।
- फर्स्ट ऐड किट को हमेशा दुरस्त रखें।
- फर्स्ट ऐड किट में दवाइयाँ, नई टॉर्च, कैंची, माचिस, महत्वपूर्ण फोन नंबर, चाकू इत्यादि रखें।
- डिब्बाबंद भोजन का प्रबंध होना चाहिए।
- घर में गैस, बिजली एवं पानी का कनेक्शन बंद करना आना चाहिए।
- भवन निर्माण में भी इस बात का ध्यान रखें कि घर के ऊपर अनावश्यक वजन नहीं पड़े।

भूकंप आने के पश्चात हमें प्रत्येक पशु का अलग–अलग निरीक्षण करना चाहिए कि किसी पशु को कोई चोट इत्यादि तो नहीं लगी है, वह किसी मुसीबत में तो नही है। यदि किसी पशु को चोट लगी है तो उसका प्राथमिक उपचार करके डॉक्टर को दिखाना चाहिए।

3. **सूखा प्रबंधन** सूखा शुष्क मौसम की वह अवधि है जिसमें वर्षा की कमी के कारण फसलें सूख जाती हैं एवं नदी–नालों में भी पानी का स्तर गिर जाता है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार सूखा ऐसी दशा है जब वर्षा सामान्य से 25 प्रतिशत कम होती है। यदि वर्षा 60 प्रतिशत ही होती है तो ऐसी स्थिति को भीषण सूखा कहा जाता है। परन्तु नेशनल एग्रीकल्चर मिशन के अनुसार जब वर्षा सामान्य से आधी या उससे भी कम हो तो ऐसी स्थिति को सूखा ग्रस्त कहा जाता है।

सूखा प्रबन्धन के उपाय

1. **जल संचयी प्रबन्धन** ऐसे इलाकों में जहां सूखा आने की संभावना ज्यादा होती है वहां वर्षा पूर्व जल संचय करने के तरीकों को अपनाना चाहिए। जैसे गाँव के तालाब के किनारों को पक्का किया जाना, घरेलू स्तर पर बड़ी टंकी का निर्माण करना, गांव में पानी के व्यर्थ बहाव को रोकने के लिये एनिकेट्स का निर्माण करना इत्यादि।

2. **कम पानी की फसलों को उगाना** यदि मौसम विभाग द्वारा कोई ऐसी चेतावनी जारी की जाती है जिसमें वर्षा सामान्य से कम होना बताया गया है तो हमें कम पानी में उगने वाली फसलों को प्राथमिकता देनी चाहिए जिससे कि हमें आर्थिक हानि कम से कम हो। इसी प्रकार चारा फसलें भी वहीं उगानी चाहिए जो कम पानी में उग जाती है।

3. **पशु प्रबंधन** सूखा होने की स्थिति में हमें ऐसे पशु को पालना चाहिए जिनकी कम पानी में भी उत्पादन क्षमता कम नहीं होती है जैसे भेड़ एंव बकरी पालन। भेड़ एवं बकरी ऐसे जानवर हैं जिनकी रेगिस्तानी ईलाकों में भी बढ़ोतरी पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु इसके विपरीत गाय–भैंस ज्यादा गर्मी को सहन नहीं कर पाती हैं जिससे कि उनकी दूध देने की क्षमता बहुत कम हो जाती है।

4. **चक्रवात प्रबंधन** भारत के समुद्र तटीय प्रक्षेत्रों में चक्रवाती तूफानों से जानमाल को नुकसान पहुंचता है। इन इलाकों में चक्रवात मानसून आने के पहले (मई–जून) से लेकर मानसून आने के बाद (अक्टूबर–नवम्बर) के समय के बीच आते हैं। इन चक्रवातों के साथ बहुत तेज गति से हवाऐं भी चलती हैं जो घरों के साथ–साथ पशुओं के बाड़े, वृक्षों इत्यादि को तहस–नहस कर देती हैं।

चक्रवातों पूर्व किये जाने वाले कार्य

1. सबसे पहले हमें पशुओं को किसी सुरक्षित जगह पर ले जाना चाहिए, जहाँ चक्रवात का प्रभाव कम से कम हो।
2. भवन निर्माण एवं पशुओं के बाड़े का निर्माण – भवन निर्माण एवं पशुओं के बाड़े का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि ये तेज हवाओं के वेग को सहन कर सके। भवनों में वायु के प्रभाव को कम करने के लिये उसमें खिड़कियां एवं जंगले का निर्माण किया जाना चाहिए। इसके अलावा प्रभावित इलाकों में जागरूकता, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि के माध्यम से भी चक्रवातों से हाने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।
3. आस–पास वाले पशुपालकों को भी इसकी सूचना देनी चाहिए ताकि वे भी स्वयं को एवं अपने पशुओं को सुरक्षित जगह पर ले जा सकें।

चक्रवात पश्चात किये जाने वाले कार्य

चक्रवात के पश्चात पशुओं के बाड़े, चारा भण्डारण करने की जगह, बाड़े में मौजूद वृक्षों को भारी नुकसान पहुंचता है। यदि चक्रवात से किसी पशु को कोई चोट लगी है तो तुरन्त उसका उपचार करना चाहिए।

5. **ओलावृष्टि** ओलावृष्टि एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जिसमें वर्षा ओलों के रूप में होती है। ओलावृष्टि से फसलों एवं पशुओं को भारी नुकसान हो सकता है। ओलावृष्टि से पकी हुई फसल गिर जाती है एवं फसल उत्पादन अत्यधिक कम हो जाता है। पशुओं में ओलावृष्टि से चोट भी लग सकती है। ओलावृष्टि से बचाव का यही उपाय है कि पशुओं को बाड़े के अन्दर छत के नीचे रखें ताकि उन्हें ओलों से बचाया जा सके।

6. **महामारी प्रबन्धन** महामारी एक ऐसी स्थिति है जिसमें कोई रोग एक समय में बहुत बड़े क्षेत्र में पशुओं को एक साथ चपेट में ले लेता है। महामारी से रोग ग्रस्त होने वाले पशुओं की संख्या बहुत अधिक होती है। महामारी में पशुओं की मृत्यु भी हो जाती है।

महामारी होने के कारण

1. **रोग प्रतिरोधक टीकों का न लगाया जाना** यदि किसान भाई भेड़ एवं बकरियों में होने वाले रोगों जैसे फड़किया, माता, मुंहपका–खुरपका एवं पी.पी.आर. की बीमारियों के टीके समय पर नहीं लगवाते हैं तो इन सभी बीमारियों के पशुओं में आने की सम्भावना बढ़ जाती है एंव बीमारी आने के पश्चात महामारी में तब्दील होने की संभावना भी बढ़ जाती है। ये बीमारियां आसपास के अन्य रेवड़ों से भी किसानों के पशुओं में फैल जाती है। क्योंकि सामान्यतः किसी गाँव के रेवड़ एक ही चरागाह भूमि पर चरते हैं इस प्रकार यदि कोई जानवर बीमार है तो वह बीमारी अन्य पशुओं को चरागाह में चरने के दौरान हो जाती है।

2. **उचित साफ–सफाई का ध्यान न रखना** यदि किसान अपने बाड़ों में उचित साफ–सफाई नहीं रखता है बीमार पशुओं को स्वस्थ जानवरों से अलग नहीं रखता है, चारा प्रबन्धन भी ठीक से नहीं करता है तो उसके जानवरों में बीमारी आने की संभावना बढ़ जाती है। इस प्रकार यदि कोई जानवर बीमार होता है तो वह बीमारी दूसरे जानवर को भी चपेट में ले लेती है।

3. **बीमार पशुओं का समय पर उपचार न कराना** किसान यदि अपने पशुओं का समय पर उपचार नहीं कराता है तो बीमार पशु के ठीक होने की संभावना कम हो जाती है एवं किसान को इसकी आर्थिक हानि भी होती है। इस प्रकार यदि किसान उपरोक्त बातों का ध्यान रखता है तो वह अपने पशुओं में महामारी आने से रोक सकता है।

महामारी होने के पश्चात क्या करें?

1. बीमार जानवरों को किसी को भी नहीं बेचना चाहिए। क्योंकि बीमार जानवर जहाँ भी जायेंगे वहां बीमारी फैला सकते हैं। इसके साथ ही महामारी के दौरान नये पशु भी नहीं खरीदने चाहिए। क्योंकि वो भी बीमारी से ग्रस्त हो सकते हैं एवं महामारी वाले इलाके में महामारी की चपेट में आ सकते हैं।
2. बीमार जानवरों को अलग रखें एवं उनके चारे पानी का इन्तजाम घर पर ही करें।
3. बीमार जानवरों को पशु चिकित्सक को दिखायें एवं दवाई समय पर दें।
4. बीमार जानवरों के बाड़े में सर्दी गर्मी से बचाव का उचित इन्तजाम करें।
5. बीमार जानवर, जिनको दवाई इत्यादि दी जा रही है, का दूध प्रयोग में न लेवें।

7. **अन्य आपदायें** अन्य आपदाओं में मुख्यतः वन विनाश, भूमि ह्रास, रासायनिक आपदायें, वन ह्रास, पर्यावरण प्रदूषण एवं यातायात दुर्घटनायें आती हैं। वन विनाश में वनों का घटना, चरागाह की जमीन का कम होना इत्यादि शामिल हैं जो मनुष्य ने अपने स्वार्थ हेतु कम कर दी हैं। भूमि ह्रास में भूमि की उपजाऊ क्षमता का कम होना आता है जिसका मुख्य कारण हमारे द्वारा खेती एवं ओद्यौगिक क्षेत्रों में प्रयोग किये जाने वाले रसायन हैं। रसायनिक आपदाओं में मुख्यतः फसलों पर प्रयोग किये जाने वाले जीवाणुनाशक, कीटाणुनाशक एवं जरूरत से ज्यादा यूरिया का प्रयोग आता है जिससे भूमि की उपजाऊ क्षमता में कमी आयी है। पर्यावरण प्रदूषण मुख्य रूप से वाहनों के चलने से निकले

धुऐं से, ओद्यौगिक क्षेत्रों में निकलने वाले रसायन युक्त पानी एवं धुएं से फैलता है। यातायात दुर्घटनायें मुख्य रूप से सड़कों पर चलने वाले वाहनों से होती हैं।

अतः अन्त में हम यही बताना चाहेंगे कि किसी भी आपदा से होने वाले नुकसान को कम करने के लिये हमें आपदा पूर्व उचित प्रबन्धन करने चाहिए। इसी प्रकार आपदा से हुये नुकसान को कम करने के लिये भी एकजुट होकर कार्य करने चाहिए। दोनों ही प्रकार के कार्यों में हमें सजगता दिखानी चाहिए एवं सरकार के कार्यों में मदद करनी चाहिए। किसी भी आपदा का सामना एकल रूप से न करके सामूहिक रूप से यदि किया जाता है तो हम आपदा से होने वाले नुकसान को बहुत कम कर सकते हैं।

हिन्दी में प्रवीणता

यदि किसी कर्मचारी ने–

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है; या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो; या

(ग) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है; तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है।

मृदा की घटती उर्वरता: कारण एवं प्रबंधन

रामेश्वर लाल मंडीवाल, राजकुमार, एस. सी. शर्मा, बलवीर सिंह साहू, ओमप्रकाश महला (वाई. पी. I)

परिचय

मृदा उर्वरता से तात्पर्य उसकी उस क्षमता से है जो पौधे की वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों को संतुलित मात्रा व उपलब्ध अवस्था में आपूर्ति कर सके। साथ ही मृदा किसी दुष्प्रभाव या विषैले प्रभाव से पूर्णतया मुक्त हो। मृदा उर्वरता से हमें उसमें पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता के स्तर का बोध होता है। मृदा उर्वरता सामान्यतः मिट्टी के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों पर निर्भर करती है। पिछले दो दशकों के दौरान खेती में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के बढ़ते प्रयोग के कारण कृषि भूमि का उपजाऊपन घटता जा रहा है। मृदा की उर्वरा शक्ति नष्ट होती जा रही है। साथ ही कृषि रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग से कृषि उपज भी विषाक्त होती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए यह नितांत आवश्यक है कि खाद्यान्न व खाद्य तेलों के उत्पादन में अधिकाधिक वृद्धि की जाए ताकि भविष्य में देश का खाद्यान्न उत्पादन बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप हो। प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादन बढ़ाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा में भी अत्यधिक कमी हो रही है। इन परिस्थितियों में मृदा उर्वरता में होने वाली गिरावट को रोकने के लिए उचित प्रबंधन करना अति आवश्यक है।

मृदा की घटती उर्वरता

मृदा खेती का आधार है और मृदा उर्वरता व मृदा उत्पादकता में आपस में बहुत गहरा संबंध है। मृदा की उर्वरता घटती है तो मृदा के द्वारा फसल का उत्पादन बढ़ाने की क्षमता भी कम होती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि फसल उत्पादन के लिए मृदा की उर्वरता बनी रहे। फसलों के उत्पादन के परिणामस्वरुप जितना पोषक तत्व फसलें जमीन से उपयोग कर रही हैं उस मात्रा को हम किसी भी प्रकार से पुनः धरती में लौटाने का ईमानदारी से प्रयास करें। ऐसा न करने पर भूमि के पोषक तत्व भंडार का दोहन होगा और मृदा की उर्वरता में गिरावट होती जायेगी। हम विगत 4 दशकों से मृदा के साथ अवांछनीय व्यवहार करते आये हैं। फलस्वरुप शुरुआत में मृदा में केवल नाइट्रोजन की कमी थी, वहीं आज कई आवश्यक तत्वों की कमी हो जाने के कारण मृदा की सेहत एवं उर्वरता खराब हो गयी है और फसलों की निरंतर खेती करने के लिए पौषक तत्वों की आपूर्ति करने की क्षमता भी घट जाती है। पोषक तत्वों में से किसी एक भी पोषक तत्व की कमी हो जाने पर फसल उत्पादन सार्थक रुप से घट जायेगा। पौधों को तीन आवश्यक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन हवा व जल से प्राप्त होते रहते हैं और इनको मृदा में अलग से देने की जरुरत नहीं होती है। अन्य 14 में से 6 पोषक तत्त्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, गंधक, जिंक एवं आयरन की कमी मृदा में देखने को मिल रही है। देश के अनेक क्षेत्रों में इनकी अत्यधिक कमी हो चुकी है। शेष 8 पोषक तत्व (कैल्शियम, मैग्नीशियम, कॉपर, क्लोरीन, मैंगनीज, बोरोन, मोलिब्डेनम एवं निकिल) की उपलब्धता की कोई खास समस्या नहीं पायी गयी। मृदा में आवश्यक पोषक तत्व की कमी होने से फसल में इन तत्वों की कमी के लक्षण प्रत्यक्ष रुप से बड़े पैमाने पर दिखाई देने लगते हैं और फसल उत्पादन में गिरावट अथवा ठहराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः हमें निरंतर खेती हेतु मृदा उर्वरता में हो रही गिरावट के कारणों को समझने की आवश्यकता है।

मृदा उर्वरता में हो रही गिरावट के कारण

1. **पोषक तत्वों का दोहन** किसानों द्वारा फसल सघनीकरण से फसलें मृदा से पोषक तत्वों की बहुत बड़ी मात्रा का दोहन करती हैं। किसान इसकी आपूर्ति रासायनिक उर्वरकों के द्वारा करता है परन्तु बिना मृदा परीक्षण के ही उर्वरकों का अपर्याप्त एवं असंतुलित प्रयोग करता है, जिसके परिणामस्वरुप मृदा की उर्वरता तथा उर्वरक–उपयोग क्षमता प्रभावित होती है।

2. **मृदा में पोषक तत्वों का बिगड़ता संतुलन** भारतीय कृषि में जितनी मात्रा में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस का प्रयोग किया जाना चाहिए उतनी मात्रा में नाइट्रोजन और फास्फोरस की पूर्ति करने में भी असमर्थ रहे हैं। साथ ही गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग भी न के बराबर हो रहा है। इन्हीं कारणों से ही मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ता जा रहा है।

3. **मृदा क्षरण** मृदा की उपरी सतह जैव पदार्थ एवं पोषक तत्वों से भरपूर होती है और अधिकांश पौधे पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति भी इसी सतह से करते हैं। वनों की कटाई, अत्यधिक पशु–चराई एवं अवैज्ञानिक मृदा प्रबन्धन आदि से उपरी सतह से जल एवं वायु द्वारा मृदा क्षरण होने से जैव पदार्थ एवं पोषक तत्वों की एक बड़ी मात्रा का अपवहन हो जाता है जिससे मृदा की उर्वरता के स्तर कमी आती है।

4. **फसल अवशेषों का कुप्रबंध** फसल अवशेषों को खेतों में जलाने से मृदा में जैविक पदार्थों की कमी अनुभव की जा रही है जिससे मृदा की गुणवत्ता में कमी आयी है। घटते जैविक पदार्थों के कारण मृदा में मौजूद लाभकारी सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता में भी कमी आ जाती है। ये सूक्ष्मजीव मृदा की सेहत में सुधार करते हैं।

5. **समस्याग्रस्त मृदा** इन मृदाओं में अम्लीकरण, क्षारीयकरण और लवणीकरण के कारण विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है। अम्लीय मृदा में लौह तत्व की विषाक्त हो जाती है जबकि क्षारीय मृदा में इसकी कमी आ जाती है इसी प्रकार क्षारीय मृदा में फॉस्फोरस तत्व की उपलब्धता में कमी आ जाती है। साथ ही मृदा उर्वरता में गिरावट आती है।

6. **कृषि विविधता का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव** मौजूदा समय में की जा रही धान ओर गेहूँ की अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रचलन के बाद भारतीय कृषि की विविधता गायब होती जा रही। कृषि–विविधता दो स्तरों पर कम हुई है, एक तो मोटे अनाज, दालों और तिलहन के फसल–चक्र की जगह गेहूँ और धान के मोनोकल्चर आ गए हैं। दूसरा गेहूं और धान की फसलें भी बहुत सघन आधार पर ली गई हैं जिससे पोषक तत्वों का दोहन बहुत अधिक मात्रा में हुआ है। हरित क्रान्ति की शुरुआत से आज तक मिट्टी की उर्वरता में निश्चित रुप से काफी कमी हुई है।

मृदा उर्वरता में सुधार के उपाय

1. **संतुलित पोषक तत्व** पोषक तत्वों को मात्रा मृदा परीक्षण के आधार पर निर्धारित करना चाहिए। पोषक तत्वों की असंतुलित मात्रा न केवल कम व निम्न गुणवत्ता का उत्पादन देती है, बल्कि मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के भंडार का भी अत्यधिक दोहन करती है। जिन तत्वों को माँग से अधिक मात्रा में डाला जाता है उनकी सम्पूर्ण मात्रा पौधे द्वारा अवशोषित नहीं हो पाती है एवं साथ ही कुछ पोषक तत्वों (लौह, जिंक, कापर) की अधिक मात्रा के प्रयोग से पौधों में विषाक्त हो सकती है। इस प्रकार असंतुलित पोषण प्रबंधन सीमित संसाधनों का दुरुपयोग है। भारत में हुए अनेक दीर्घकालीन प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए संतुलित पोषण श्रेष्ठतम विकल्प है। एक पोषक तत्व की अत्यधिक मात्रा में उपस्थित अन्य तत्त्व के अवशोषण को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए फॉस्फोरस व पोटेशियम उर्वरक की अनुपस्थिति में पौधों की नाइट्रोजन के प्रति अनुक्रिया कम होती जाती

है। नाइट्रोजन के साथ यदि फॉस्फोरस एवं पोटेशियम की उपयुक्त मात्रा का प्रयोग किया जाए तो फसल के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है तथा पोटाश डालने से उसे और अधिकतम स्तर तक पहुँचाया जा सकता है। सूक्ष्म–पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए सूक्ष्म–पोषक तत्वों को मिट्टी में डालकर अथवा पर्णीय छिड़काव द्वारा दूर किया जा सकता है। संतुलित पोषण प्रबंधन से न केवल उत्पादन में वृद्धि होती है, अपितु पोषक तत्वों व जल उपयोग क्षमता को भी बढ़ाया जा सकता है जो अंततः कृषि से प्राप्त लाभ को बढ़ाता है। इसलिए फसलोत्पादन से अधिकतम लाभ लेने के लिए सभी 17 आवश्यक पोषक तत्व पौधों को संतुलित मात्रा में उपलब्ध होने चाहिए। अतएव निरंतर खेती में पौधों की उचित वृद्धि के लिए सभी आवश्यक तत्वों का पर्याप्त मात्रा एवं सही अनुपात में होना अनिवार्य है।

2. **जैविक खाद** जैविक खाद का उपयोग किसान प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं परन्तु अधिक पैदावार देने वाली फसल की किस्म के लिए अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होने के कारण जैविक खाद पर निर्भर न रहकर रासायनिक उर्वरकों को मुख्य रूप से प्रयोग में लाते हैं। उर्वरकों का लगातार प्रयोग मृदा व पर्यावरण के लिए हानिकारक है। जैविक खाद न केवल पोषक तत्वों की पूर्ति करती है अपितु मृदा की भौतिक, जैविक तथा रासायनिक गुणवता को भी बढ़ाती है। भारत में गोबर की खाद, विभिन्न प्रकार की कम्पोस्ट, वर्मी कम्पास्ट, बायोगैस स्लरी, खालियां, मुर्गी, भेड़ अथवा बकरी से प्राप्त खाद एवं हरी खाद मुख्य रूप से प्रयोग में आने वाले जैविक खाद के स्त्रोत हैं। खेत में हरी खाद के लिए दलहनी फसलें उगाकर मृदा की उर्वरता में सुधार लाया जाना चाहिए। हरी खाद की फसलों में ढ़ेंचा, सनई, लोबिया तथा ज्वार मुख्य है। (तालिका–1)

तालिका–1, दलहनी हरी खाद फसलों का नाइट्रोजन स्थिरीकरण (यौगिकीकरण) में योगदान

फसल	उगाने की ऋतु	हरे पदार्थ की औसत उपज (टन/है.)	हरे पदार्थ में नाइट्रोजन (%)	मृदा में नाइट्रोजन का योगदान (किगा./है.)
ढ़ेंचा	खरीफ, जायद	15	0.45	77
मुँग	खरीफ, जायद	5	0.53	40
लोबिया	खरीफ, जायद	12	0.50	56
ग्वार	खरीफ, जायद	14	0.35	62
बरसीम	रबी	10	0.43	60

3. **फसल अवशेष** गेहूं के अवशेष कपास के डण्ठल, गन्ने की सूखी पत्तियों तथा धान का भूसा इत्यादि की बड़ी मात्रा उपलब्ध है। अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ कि गेहूँ व धान का भूसा के साथ 25 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर या फली वाली फसल का भूसा डालने से मृदा की उर्वरता पर धनात्मक प्रभाव होता है।

4. **जैव–उर्वरक** यह उर्वरक वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण, मृदा में उपस्थित फॉस्फोरस व अन्य पोषक तत्वों को पौधों के लिए उपलब्धता बढ़ाकर मृदा की उर्वरता एवं स्वास्थ्य को बनाये रखते हैं। उदाहरण के लिए फली वाली फसलों में राइजोबियम कल्चर का प्रयोग करना।

5. **रासायनिक उर्वरक** आधुनिक कृषि में खाद्यान्न उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रासायनिक उर्वरकों का मृदा उर्वरता पर धनात्मक प्रभाव इस संदर्भ में लिया जा सकता है कि इनके प्रयोग से मरुस्थलीकरण

कम हुआ, जैव विविधता बढ़ी, पोषक तत्वों के दोहन में कमी और वनों की कटाई में कमी हुयी है। फसलों में रासायनिक उवर्रकों का प्रयोग वैज्ञानिक तरीके से करना चाहिए। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम के लिए क्रमशः यूरिया, डीएपी और म्युरेट ऑफ पोटाश उर्वरक का प्रयोग किया जाता है। गंधक के प्रमुख स्रोत गंधक तत्व, जिप्सम एवं आयरन पाइराइट्स हैं। जिंक व आयरन की कमी को दूर करने के लिए क्रमशः जिंक सल्फेट एवं आयरन सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। (तालिका–2) फॉस्फोरस एवं पोटाशधारी उर्वरकों का प्रयोग प्रायः बुआई के समय तथा नाइट्रोजनधारी उर्वरकों (यूरिया एवं अमोनियम सल्फेट) का प्रयोग एक बार की बजाय दो या तीन बार करना अधिक उपयोगी रहता है।

तालिका–2 सूक्ष्म–पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए मृदा अनुप्रयोग और पर्णीय छिड़काव

उर्वरक	मृदा अनुप्रयोग किग्रा./हेक्टेयर)	पर्णीय छिड़काव/हेक्टेयर
जस्ता	जिंक सल्फेट 25 किग्रा./हेक्टेयर	5 कि.ग्रा, जिंक सल्फेट एवं 1000 लीटर पानी
लोहा	फेरस सल्फेट 50 किग्रा/हेक्टेयर	(मृदा अनुप्रयोग अधिक उपयोगी नहीं हैं।) 10 कि.ग्रा फेरस सल्फेट एवं 1000 लीटर पानी
मैंगनीज	मैंगनीज सल्फेट 10 किग्रा./हेक्टेयर	10 कि.ग्रा फेरस सल्फेट एवं 1000 लीटर पानी
बोरोन	बौरैक्स 10 किग्रा./हेक्टेयर	2 कि.ग्रा. बोरेक्स एवं 1000 लीटर पानी
तांबा	कॉपर सल्फेट 10 किग्रा./हेक्टेयर	1 कि.ग्रा. कॉपर सल्फेट एवं 100 लीटर पानी

स्त्रोत : मृदा, पानी एवं पादप विश्लेषण पुस्तिका (केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान केन्द्र, करनाल)

6. **मृदा सुधार** सफल कृषि उत्पादन के लिए लवणीय, क्षारीय व अम्लीय मृदाओं का सुधार आवश्यक है। लवणीय, क्षारीय व अम्लीय मृदाओं में पौधे भूमि में उपलब्ध पोषक तत्वों व जल का अवशोषण नहीं कर पाते हैं। लवणीय भूमि सुधार के लिए भूमि समतलीकरण, मेड़बंदी या सिंचाई जलभराव करके घुलनशील लवणों का निक्षालन करें। मृदा जांच के आधार पर क्षारीय भूमि में जिप्सम, सल्फर व केल्साइट का प्रयोग करें। हरी खाद वाली फसलों जैसे ढैंचा, सनई व लोबिया भी क्षारीय भूमि सुधारने में उपयोगी सिद्ध हुई है। अम्लीय मृदाओं के सुधार हेतु मृदा पीएच के अनुसार चूने की मात्रा का प्रयोग करें।

7. **मृदा संरक्षण** मृदा की ऊपरी उपजाऊ सतह को जल व वायु द्वारा होने वाले क्षरण से बचाना चाहिए। इसके लिए खेतों की मेड़बंदी करके वर्षा ऋतु में वर्षा जल को संरक्षित कर लिया जाए। इससे क्षेत्र विशेष में भूमिगत जलस्तर भी ऊपर उठेगा। जलकटाव से होने वाले नुकसान से भी मृदा को बचाया जा सकता है। मृदा में अधिक से अधिक जैविक खादों का प्रयोग करें जिससे भूमि की जलधारण क्षमता को बढ़ाया जा सके। कृषि कार्यों में बदलाव जैसे शून्य जुताई को अपनाकर भी मृदा स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। खेत की बार–बार जुताई करने से मृदा संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा को आवरण प्रदान करने वाली फसलों जैसे मूंग, उड़द, लोबिया आदि का समावेश फसल चक्र में करने से भी मृदा को संरक्षित कर सकते हैं।

तालिका–3 विभिन्न उर्वरता मानकों का मृदा में वर्गीकरण

क्रमांक	मानदंड	मान	वर्ग
1	पी एच (1:2.5)	6.5 से कम	अम्लीय
		6.5 से 7.5	क्षारीय
		7.5 से अधिक	लवणीय

क्रमांक	मानदंड	मान	वर्ग
2	विद्युत चालकता (1:2.5) डेसी साइमेन्स	1 से कम	सामान्य
		1 से अधिक	लवणीय
3	जैविक कार्बन (%)	0.5 से कम	कम
		0.5 से 0.75	मध्यम
		0.75 से अधिक	अधिक
4	उपलब्ध नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हेक्टेयर)	250 से कम	कम
		250 से 560	मध्यम
		560 से अधिक	अधिक
5	उपलब्ध फॉस्फोरस (कि.ग्रा./हेक्टेयर)	10 से कम	कम
		10 से 25	मध्यम
		25 से अधिक	अधिक
6	उपलब्ध पोटेशियम (कि.ग्रा./हेक्टेयर)	160 से कम	कम
		160 से 280	मध्यम
		280 से अधिक	अधिक
7	उपलब्ध गंधक (पीपीएम)	10 से कम	कम
		10 से 20	मध्यम
		20 से अधिक	अधिक
8	जस्ता	0.6 पीपीएम से कम	कम
		0.6 से 1.2 पीपीएम	सामान्य
		1.2 पीपीएम से अधिक	अधिक
9	लोहा	4.5 पीपीएम से कम	कम
		4.5 से 9.0 पीपीएम	सामान्य
		9.0 पीपीएम से अधिक	अधिक
10	तांबा	0.2 पीपीएम से कम	कम
		0.2 से 0.4 पीपीएम	सामान्य
		0.4 पीपीएम से अधिक	अधिक
11	मैंगनीज	2.0 पीपीएम से कम	कम
		2.0 से 3.5 पीपीएम	सामान्य
		3.5 पीपीएम से अधिक	अधिक

स्त्रोत मृदा, पानी एवं पादप विश्लेषण पुस्तिका (केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान केन्द्र, करनाल

राजस्थान की अर्थव्यवस्था के लिए बढ़ता तापमान, सिकुड़ते चरागाह, जलवायु परिवर्तन, गंभीर खतरा - एक विवेचना

रमेश बाबू शर्मा, सुरेश चन्द्र शर्मा एवं भारती शर्मा

राजस्थान की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि कार्यों एवं पशुपालन पर ही निर्भर करती है तथा कृषि के उपरान्त पशुपालन ही जीविका का प्रमुख साधन है। राजस्थान मुख्यतः एक कृषि एवं पशुपालन प्रधान राज्य है और अनाज व सब्जियों का निर्यात करता है। अल्प व अनियमित वर्षा के बावजूद यहां लगभग सभी प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। राजस्थान सर्वाधिक ऊन का उत्पादन करने वाला राज्य है। ऊँटों व शुष्क इलाकों के पशुओं की विभिन्न नस्लों पर राजस्थान का एकाधिकार है। राज्य के कुल क्षेत्रफल का लगभग 60 प्रतिशत मरूस्थलीय प्रदेश होने के कारण जहां जीविकोपार्जन का मुख्य साधन पशुपालन ही है। राजस्थान में देश के पशुधन का 7 प्रतिशत है, जिसमें भेड़ों का 25 प्रतिशत अंश पाया जाता है।

1. राजस्थान में देश के कुल दुग्ध उत्पादन का अंश लगभग 13 प्रतिशत होता है।
2. राज्य के पशुओं द्वारा भार–वहन शक्ति 35 प्रतिशत है।
3. भेड़ के माँस में राजस्थान का भारत में अंश 30 प्रतिशत है।
4. ऊन में राजस्थान का भारत में अंश 40 प्रतिशत है। राज्य में भेड़ों की संख्या समस्त भारत की संख्या का लगभग 25 प्रतिशत है।

कृषि मानसून एक जुआ की तरह होने के कारण पशुपालन का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। राजस्थान में पशुधन का महत्व निम्नलिखित तथ्यों से देखा जा सकता है

राजस्थान में विभिन्न प्रकार के पशु पाए जाते हैं, जिनकी 2003 की जनसंख्या के आधार पर संख्या इस प्रकार है:–

- गौवंश अथवा गाय–बैल – 1.09 करोड़
- भैंस जाति – 1.04 लाख
- भेड़ जाति – 1.00 करोड़
- बकरी जाति – 1.68 करोड़
- शेष ऊँट, घोड़े, गधे, सूअर आदि – 10 लाख

राजस्थान में ऊन, दूध तथा चमड़ा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, परन्तु इन पर आधारित उद्योगों की राजस्थान में कमी होने से दूध, चमड़ा दूसरे राज्यों में निर्यात कर देने से राज्य को पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाता है। पशुओं के स्वास्थ्य के अतिरिक्त कृत्रिम गर्भाधान, बेकार पशुओं का बधियाकरण तथा उन्नत किस्म के चारे के बीजों का वितरण का उद्देश्य होना चाहिये। किसी की भी रूचि पर्यावरण के संरक्षण में नहीं है क्योंकि वह यह नहीं जानता कि भविष्य में किस प्रकार की स्थिति से उसे तथा उसकी आने वाले वंश को पर्यावरण संरक्षण, पानी के लिये गुजारना पड़ेगा।

इस ग्लोबल वार्मिंग के कारण एक ओर जहां पीने के पानी का संकट गहराएगा वहीं मौसम में तेजी से बदलाव होगा और तापमान बढ़ने से ठंड के दिनों में भी तापमान अधिक रहेगा। ऐसे में यह सोचा जा सकता है कि यह कितना खतरनाक होगा।

एक व्यक्ति की प्राकृतिक उम्र लगभग 120 वर्ष मानी गई है, लेकिन उचित व उत्तम भोजन, स्वच्छ व निर्मल जल और प्रदूषण मुक्त वायु नहीं मिलने के कारण वह 70 वर्ष के आसपास दुनिया को अलविदा हो रहे हैं। इस पर भी यदि उसकी गलत जीवन शैली है तो वह 50 से 60 वर्ष के बीच मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि हमारी धरती अपनी धुरी से 1 डिग्री तक खिसक गई है और ग्लोबल वार्मिंग चरम सीमा की ओर बढ़ रही है। अब जल्द ही इसके प्रति सामूहिक प्रयास नहीं किए तो 'महाविनाश' होना निश्चित है।

अब तो गर्मी के मौसम में एशिया के अधिकतर शहरों का अधिकतम तापमान 50 डिग्री सेन्टीग्रेड के आस–पास रहने लगा है। पिछले सालों में मानव की गतिविधियां अधिक बढ़ने के कारण तापमान में वृद्धि देखने को मिली है जो मानव अस्तित्व के लिए बड़ा खतरनाक है। हिमालयी ग्लेशियरों को लेकर संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने एक अध्ययन कराया। इस अध्ययन में साफतौर पर चेतावनी दी कि ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालय क्षेत्र की 15,000 हिमनद (ग्लेशियर) और 9,000 हिमताल (ग्लेशियर लेक) में आधी सदी 2050 और अधिकतर वर्ष 2100 तक समाप्त हो जाएंगे। इस बात की पुष्टि भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने भी की है।

प्रदूषण के कारण ही कैंसर जैसे घातक रोग बढ़ते जा रहे हैं। इसके अलावा अनजान रोगों से लोगों की मृत्यु के आंकड़े भी बढ़ते जा रहे हैं। मानवीय कारणों से सस्पेंडेबल पार्टिकुलेट मैटर (एस.पी.एम.) में भी वृद्धि हो रही है। जिससे प्रतिवर्ष करीब 21 लाख लोगों की मौत हो जाती है।

वृक्ष धरती की आत्मा की तरह हैं। इन्हें ईश्वर का प्रतिनिधि कहा गया है। पूरे विश्व में वनों को तेजी से काटा जा रहा है। खासकर वर्षावन के कट जाने से धरती का वातावरण बदल रहा है। वायुमंडल में कार्बनडाई ऑक्साईड, कार्बन मोनो ऑक्साइड, सीएफसी जैसी जहरीली गैसों को सोखकर धरती पर रह रहे असंख्य जीवधारियों को प्राणवायु आक्सीजन देने वाले जंगल आज खुद अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। भारत मे पेड़ों की उपलब्धता की स्थिति काफी चिंताजनक है। लगभग भारत में प्रति 36 व्यक्तियों के लिए एक पेड़ है। कोलकाता जैसे महानगर में 15 हजार लोगों के लिए एक पेड़ है। हालात दिन पर दिन गंभीर होते जा रहे हैं। इसी स्थिति से दुनिया का अनुमान लगा पाना कठिन हो गया है। पर्वतों के खनन से मौसम बदलने लगा है। गर्म और दक्षिणावर्ती हवाएं अब ज्यादा चलने लगी है। हवाओं का रूख भी अब समझ में नही आता कि कब किधर चलकर कहर ढहाएगा। भविष्य में धरती पर दो ही तत्वों का साम्राज्य होगा– रेगिस्तान और समुद्र। समुद्र में जीव–जंतु होंगे जो अपने अस्तित्व के लिये लड़ाई लड़ रहे होंगे और रेगिस्तान में सिर्फ रेत।

तापमान–आर्द्रता सूचकांक एवं वैश्विक गर्मी के कारण वर्ष 2020 तक दूध उत्पादन में 1.8 मिलियन टन की कमी और वर्ष 2050 तक 15 मिलियन टन हो जाने की आशंका है। ग्लोबल जलवायु परिवर्तन के कारण संकर गायें और भैंसें अधिक प्रभावित होंगी।

दुधारू पशुओं पर ताप दबाव के बारे में किए गए कुछ अध्ययनों में यह दर्शाया गया है कि 72 से कम टीएचआई तापमान आर्द्रता सूचकांक का कोई दुष्प्रभाव नहीं है। यह 72 से 79 के बीच टीएचआई होने पर दुग्ध उत्पादन में 7 से 8 प्रतिशत की कमी होती है। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा कराए गए अध्ययन के अनुसार ग्लोबल जलवायु परिवर्तन के कारण 1832 मिलियन लीटर दूध उत्पादन में वार्षिक क्षति होने का अनुमान है।

देश में दुधारू पशुओं की जनसंख्या बहुत है परन्तु उत्पादकता काफी कम। भारत की उत्पादकता विश्व औसत की आधी से भी कम है और हम जो प्राप्त करते हैं वह इजराइल जैसे देश का लगभग 10 प्रतिशत है। अतः देश की धारिता क्षमता के अनुरूप पशुओं की जनसंख्या स्थिर करने पर ध्यान दिया जा रहा है। विशेष रूप से दो नस्लों वाले पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान पर ध्यान दिया जा रहा है। स्वदेशी नस्लों के पशुओं में दबाव सहने की क्षमता चाहे वह ताप दबाव अथवा आर्द्रता दबाव अथवा बीमारियों से मरने की क्षमता हो। मुख्यतः ध्यान मुखपका और खुरपका बीमारियों को नियंत्रण करने पर है जिससे देश को अत्यधिक आर्थिक घाटा हो रहा है।

जिस प्रकार प्रति वर्ष तापमान बढ़ रहा है। इससे मनुष्य के साथ बढ़ते तापमान से बेजुबान जानवरों के लिए पीने के पानी के साथ–साथ खाने के लिए हरी घास का संकट भी बढ़ता जा रहा है। पहले गांवों में बड़े–बड़े चरागाह हुआ करते थे, जो धीरे–धीरे विलुप्त होते जा रहे हैं। चरागाह भूमि पर बड़े–बड़े दबंगो, राजनेताओं, भू माफिओं ने अपना कब्जा कर लिया है जिससे सरकारी मानचित्रों से गोचर भूमि तेजी से विलुप्त हो रही है। पशुपालकों को जानवरों का पेट भरने के लिए इधर–उधर जैसे सड़कों, रेल लाइनों, वन भूमि के किनारे भटकना पड़ रहा है। हरे चारे के साथ–साथ सूखे चारे का संकट भी बढ़ता जा रहा है। जानवरों को पर्याप्त हरा चारा न मिल पाने के कारण दुग्ध उत्पादन में कमी आती जा रही है और पशुपालकों के लिए पशुपालन घाटे का सौदा साबित हो रहा है। जिसके कारण पशुपालक मजदूरी करने के लिए विवश हो रहे हैं।

देश में फिलहाल लगभग एक करोड़ तीस लाख हेक्टेयर भूमि ही स्थायी चरागाह के लिए वर्गीकृत है। जो काफी नहीं है, और फिर उसकी हालत भी अच्छी नहीं है। इसलिए ये पशु बंजर, परती तथा खेती के अयोग्य लाखों हेक्टेयर जमीन से जो कुछ भी निकाल सकते हैं, वहीं खाते हैं। हमारे ग्राम्य जीवन में पशुधन की अहम भूमिका है। हमारे यहां का किसान केवल अन्न का उत्पादक नहीं है, साथ ही उसके नित्य जीवन में खेती और पशुपालन एक दूसरे के पूरक हैं। लेकिन पानी और चारे की कमी के कारण जानवरों के सामने संकट खड़ा हो गया है।

दबंगों के कब्जे से चरागाह को मुक्त कराना प्रशासन के लिए बड़ी चुनौती है। सूखे चारे की कमी का हाल भी भयंकर है। बेंगलूरू की इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल एण्ड इकोनॉमिक चेंज के एक और सर्वेक्षण के अनुसार सूखे और हरे दोनों तरह के चारे की कमी लगातार बनी हुई है।

प्रदेश में चरागाहों को अतिक्रमण कर्ताओं से मुक्त कराने के लिए कई बार प्रयास किए गए। लेकिन वे मात्र खानापूर्ति तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। चरागाहों का क्षेत्रफल कम होने के कारण पशुओं की उत्पादकता घटती है और पशुओं पर ही जिनकी जीविका निर्भर है उनकी आर्थिक स्थिति ही नहीं, पूरी जीवनशैली खतरे में आ जाती है। इसके चलते पशुपालक मजदूरी करने के लिए विवश होते हैं। देश की राष्ट्रीय आय में पशुपालन का प्रत्यक्ष योगदान कोई 6 प्रतिशत है, पर परोक्ष योगदान इससे कहीं ज्यादा है। खाद देने वाले और भार ढोने वाले के रूप में ये पशुधन देश के लाखों–करोड़ों छोटे किसानों के लिए देश में 6 प्रतिशत में भी बंजारे (घुमक्कड़ जाति) भी हैं जिनका गुजारा पशुपालन से चलता है। ध्यान देने की बात तो यह है कि बैल और भैंस से चलने वाली बैलगाड़ियों के बिना देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पहिया ही रूक जाएगा।

इसलिए चरागाहों के रखरखाव की ठोस योजना होनी चाहिए। चरागाहों को विकसित और संरक्षित करने के लिए राजस्थान और आन्ध्रप्रदेश में 2006 में एक कार्यक्रम चरागाह भूमि विकास और प्रबंधन शुरू किया गया। इसके तहत सामाजिक संस्था और किसानों ने मिलकर निजी चरागाह तैयार किया। उसको बढ़ावा देने की अविलम्ब आवश्यकता है।

बरसात के मौसम में चरागाहों को पुनर्जीवित और हराभरा बनाने के लिए व्यापक स्तर पर प्रदेश में अभियान चलाया जाए। आने वाले मानसून में ही इस अभियान को शुरू किया जा सकता है। अंजन, धामन, स्टाइलो, दीनानाथ आदि घास उगाने से चारे की समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है। नेपियर एवं गिनी घास से भी चारे का संकट कम करने में मदद मिल सकती है। एक हेक्टेयर भूमि पर उगी घास से 10–12 पशुओं को साल भर के लिए चारा मिल सकता है। चरागाहों का क्षेत्रफल कम होने से पशुओं की उत्पादकता तो घटती ही है बल्कि पशुपालकों की आर्थिक स्थिति पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

सुझाव

1. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार ने पशुधन में अनुकूलन और अल्पीकरण दोनों कार्य नीतियों के लिए विभिन्न कृषि परिस्थितिक क्षेत्रों में राज्य कृषि विश्वविद्यालयों, गैर सरकारी संगठनों, राज्य विभागों को शामिल करके अनुसंधान कार्यक्रमों को प्रस्तावित किया है।
2. राजस्थान में ऊन, दूध तथा चमड़ा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, परन्तु इन पर आधारित उद्योगों की राजस्थान में कमी होने से ऊन, चमड़ा, दूध दूसरे राज्यों से निर्यातकर देने से राज्य को पर्याप्त लाभ नहीं मिल रहा है। अतः इनसे सम्बन्धित उद्योग लगाये जायें।
3. वर्षा के दौरान उत्पन्न मानसून हरवेज, खरपतवार तथा उत्पन्न हुये चारे, जोजरू, बरू इत्यादि को साईलेज/हे बनाकर कमी के समय उपयोग में लाया जा सकता है।

वही भाषा जीवित और जागृत रह सकती है जो जनता का ठीक–ठाक
प्रतिनिधित्व कर सके और हिंदी इसमें समर्थ है।
पीर मुहम्मद मूनिस

जलवायु परिवर्तन के कारण जैव विविधता पर होने वाली समस्यायें और उनका निराकरण

महेश चन्द मीना, सुरेन्द्र कुमार सांख्यान, रणधीर सिंह भट्ट, तरूण कुमार जैन एवं आर्तबन्धु साहू

हम सभी के लिए यह जानकारी अत्यंत जरूरी है कि जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए वर्तमान खाद्य उत्पादन प्रणालियों को कैसे सक्षम बनाया जाए। इसके लिए हमें अपने किसान को अपने परम्परागत कृषि कलापों के अलावा अन्य कृषि व्यवसायों के ज्ञान की जानकारी की आवश्यकता है ताकि वे पशुपालन, कृषि वानिकी तथा मत्स्य क्षेत्रों को प्राथमिकता दें। इसके फलस्वरूप प्रभावित क्षेत्रों में रहने वाले छोटे पशुपालकों, कृषकों, मछुआरों और स्थानीय लोगों को जलवायु परिवर्तन के बदलावों से निपटने हेतु किये जा रहे निवेशों का लाभ उठाने का समान अवसर मिल सके। इस तथ्य से कतई इंकार नहीं किया जा सकता है कि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव समस्त प्राणिजगत पर पड़ता है। इस क्रम में सर्वाधिक प्रभावित होने वाले वर्ग में करोड़ों की संख्या में छोटे कृषक, मछुआरे, और वनों पर आजीविका हेतु निर्भर लोगों को रखा जा सकता है। इन परिवर्तनों से भूमि, जल, जैवविविधता, खाद्य उत्पाद तथा फसलों से प्राप्त होने वाले जैव ईंधन की उपलब्धता में जबर्दस्त कमी हो रही है और इस कारण सीधे–सीधे उपरोक्त साधनहीन एवं निर्धन वर्ग प्रभावित हो रहें हैं। विश्व खाद्य दिवस (16 अक्टूबर) के अवसर पर हमें एक बार फिर इस कुपोषण ग्रस्त निर्धन आबादी के लगभग 65 करोड़ की विशाल जनसमूह की चिन्ताजनक दशा पर मनन करना चाहिए कि हम किस प्रकार प्रभावी रूप से इसकी दशा को सुधार सकतें है। इनमें से अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले कृषि पर निर्भर लोग हैं। इन लोगों की संख्या आगामी वर्षों में कम करने का लक्ष्य निर्धारित किया जाना चाहिए हालांकि भू तापमान और जैव ईधन खपत में निरंतर होने वाली वृद्धि से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कुछ देशों में भुखमरी के शिकार लोगों की संख्या आगामी दशकों में तेजी से बढ़ सकती है।

जलवायु परिवर्तन का पारिस्थितिकी पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से विभिन्न खाद्य फसलों, पशुओं, मछली पालन और चारागाह के लिए भूमि की उपयुक्तता काफी हद तक प्रभावित होती है। इतना ही नहीं इसका प्रभाव स्वास्थ्य, वन उत्पादकता, कीटों और रोगों के प्रकोप, जैव विविधता तथा पारिस्थितिकी पर भी पड़ेगा। तापमान में बदलाव और मौसम परिवर्तन की अत्यधिक बारम्बारता से फसल एवं पशु उत्पादन में जबर्दस्त कमी के रूप में सामने आ सकती है तथा इससे खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव पड़ेगा। हालांकि विभिन्न प्रकार के तौर–तरीकों का इस स्थिति से बचाव के लिए प्रयोग किया जा रहा है, जिनमें टिकाऊ एवं पारिस्थितिक कृषि पद्धतियां, मौसम पूर्वानुमान एवं चेतावनियां, जलवायु परिवर्तन की पहचान हेतु प्रणालियां इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। इनके अलावा ग्रामीण निवेश को बढ़ावा देना होगा ताकि लघुकालिक जलवायु परिवर्तन के खाद्य सुरक्षा पर पड़ने वाले दीर्घकालिक प्रभावों पर नियंत्रण रखा जा सके। इसमें फसल बीमा तथा कृषकों को बेहतर कृषि एवं भू उपयोग पद्धतियां अपनाने हेतु प्रोत्साहन देना शामिल है। कृषि को ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की रोकथाम हेतु वृहद भूमिका निभानी पड़ेगी ताकि वनों के कटाव पर नियंत्रण एवं प्रबंधन, वनों की आग के नियंत्रण के प्रभावी उपायों, खाद्य और ऊर्जा के लिए कृषि वानिकी, मृदा कार्बन स्तर को बनाए रखना, नियंत्रित चराई से भू अपक्षरण में कमी, दुधारू पशुओं के लिए पोषक चारे की उपलब्धता, पशुओं के गोबर से बायोगैस की अधिकाधिक प्राप्ति तथा मृदा एवं जल स्रोतों के संरक्षण आदि पर ध्यान दिया जा सके। कार्बन

उत्सर्जन तथा जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता में कमी लाने में जैव ईंधनों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ेगी ताकि खाद्य सुरक्षा तथा वर्तमान एवं भावी भू उपयोग को सही दिशा दी जा सके।

प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने वाले घटक

भूमि

जलवायु परिवर्तन से कई ग्रामीण समुदायों के बड़े स्तर पर विस्थापन की समस्या उठ खड़ी हुई है। उदाहरण के लिए समुद्र में जल स्तर की वृद्धि से विकासशील देशों की तटवर्ती निचले क्षेत्रों में रहने वाली बड़ी आबादी को ऊपरी क्षेत्रों में बसाए जाने की जरूरत पड़ेगी। इसी प्रकार बाढ़ की बढ़ती बारम्बारता और उसकी विभीषिका से कृषकों और पशुपालकों की आजीविका पर प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार के पुनर्वास से समाज में भयंकर रोष और टकराव की स्थितियां रोजगार पाने और अन्य सीमित संसाधनों के लिए पैदा हो जाएंगी।

जल

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषकों एवं पशुपालकों के लिए जल आपूर्ति की भयंकर समस्या हो जाएगी तथा बाढ़ एवं सूखे की पुनरावृत्ति में वृद्धि होगी। इसमें विशेषकर बारानी कृषि बुरी तरह प्रभावित होगी। बारानी कृषि भूमि सहारा अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका और एशिया के क्षेत्रों में पायी जाती है। इस वजह से अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में लम्बें शुष्क मौसम तथा फसल असफलता के मामलों में भी बढ़ोतरी देखने को मिलेगी। इस प्रकार बड़ी आबादी के विस्थापन की समस्या विकराल रूप ले सकती है। यही नहीं बड़ी नदियों के मुहानों पर भी कम जल बहाव, लवणता, बाढ़ में वृद्धि तथा समुद्र जल स्तर में बढ़ोतरी एवं शहरी तथा औद्योगिक प्रदूषण की वजह से सिंचाई हेतु जल उपलब्धता पर भी खतरा महसूस किया जा सकता है।

जैव विविधता

पर्यावरण आकलन के अनुमानों के अनुसार इस शताब्दी के अंत तक जलवायु परिवर्तन ही जैवविविधता की हानि का मुख्य कारण होगा। लेकिन जलवायु परिवर्तन से खाद्य कृषि के प्रति जैवविविधता के मूल्यों में वृद्धि देखने को मिलेगी। स्थानीय समुदायों, अनुसंधानकर्ताओं एवं प्रजनकों के लिए जैव संसाधन ही वे जीवित संसाधन होंगे जिनका इस्तेमाल खाद्य एवं कृषि उत्पादन को बदलती मांगों के अनुरूप ढ़ालने में किया जा सकेगा। इन संसाधनों के भंडारों को अक्षुण्ण बनाए रखना ही जलवायु परिवर्तनों के बदलावों से निपटने में सहायक सिद्ध होगा।

कीट और रोग

इस बात के ठोस प्रमाण हैं कि जलवायु परिवर्तन से पशुओं एवं पौधों के कीटों एवं रोगों के प्रसार पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। तापमान, नमी तथा वातावरण की गैसों से पौधों फफूंद तथा अन्य रोगाणुओं के प्रजनन में वृद्धि तथा कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं व पोषी के अंतः संबंधों मे बदलाव आदि भी दुष्परिणाम देखनें को मिलेंगे। इसका प्रमाण वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्र में आए टिड्डी दल से लगाया जा सकता है कि किस प्रकार जलवायु परिवर्तन से इस कीट का संक्रमण राजस्थान से हरियाणा, दिल्ली एवं पड़ोसी राज्यों तक देखा गया है। किस प्रकार इनके प्रभाव से फसलों को भारी नुकसान पहुंचा। भू आच्छादन में वनों की कटाई अथवा अपरदित मृदा के रूप में होने वाले परिवर्तनों से पौधों और पशुओं के लिए कीटों और रोगाणुओं के प्रकोप के खतरे अधिक बढ़ जाएंगे। इस स्थिति से निपटने के लिए नई कृषि पद्धतियों, विभिन्न फसलों और पशु

नस्लों तथा समेकित कीट प्रबंधन के लिए नए सिद्धांतों का विकास करना आवश्यक होगा, ताकि कीटों की रोकथाम हो सके। विभिन्न देशों की सरकारों को भी राष्ट्रीय पशु और पौध स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ करने की आवश्यकता पड़ेगी।

मछली पालन एवं जलजीव संवर्द्धन

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से पशुपालकों, कृषकों, मात्स्यिकी और जलजीव संवर्धन पर निर्भर आबादी को खासा नुकसान हो सकता है। इनकी उत्पादन और विपणन की लागत बढ़ेगी, क्रय शक्ति और निर्यात में कमी आएगी तथा विकट प्रकार के मौसम का जोखिम गहरायेगा। कुछ क्षेत्रों में जलजीव खाद्याहार एवं उनकी आपूर्ति समाप्त हो सकती है तथा आजीविका उपार्जन का संकट पैदा हो सकता है। हालांकि तापमान बढ़ने वाले क्षेत्रों में मत्स्य उत्पादन के बढ़ने की भी संभावना हो सकती है।

जोखिम का प्रबंधन –

भू तापमान बढ़ने से उत्पन्न होने वाले प्रभावों के असर को कम करने के लिए आगामी दशकों में महत्वपूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता है। इनमें प्रमुख हैं :

1. जलवायु और जलवायु प्रभाव पर आधारित मॉडलों का विकास ताकि स्पष्ट रूप से पता लगाया जा सके कि इन परिवर्तनों का कृषि और वानिकी पर किस प्रकार का असर पड़ सकता है।
2. आजीविका अर्जन के तरीकों में वैविध्यता तथा कृषि, मात्स्यिकी और वानिकी पद्धतियों में बेहतर जल प्रबंधन, मृदा संरक्षण एवं अन्य पौधों व वृक्षों की किस्मों का इस्तेमाल करनें हेतु प्रोत्साहन।
3. मौसम और जलवायु पूर्वानुमानों में सुधार एवं विस्तार।
4. पूर्व चेतावनी पद्धतियों की मॉनीटरिंग में सुधार।
5. आपदा जोखिम प्रबंधन का विकास ।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से निबटने के लिए निम्न उपायों पर ध्यान दिया जाना चाहिए

1. भू उपयोग योजना, खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों, मात्स्यिकी एवं वानिकी नीतियों में सामंजस्य।
2. सिंचाई अथवा तटीय संरक्षण हेतु जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न जोखिम के लिए लागत/ लाभ विश्लेषण की आवश्यकता।
3. पशुपालकों एवं कृषकों की सफलता गाथा का प्रसार होना आवश्यक।
4. राष्ट्रीय स्वीकार्यता कार्यक्रम का क्रियान्वयन ताकि जलवायु परिवर्तन हेतु कार्यों को सहायता प्रदान की जा सके।
5. नए और भावी जोखिमों की चुनौतियों का सामना करने के लिए आपदा प्रबंधन योजनाओं की जरूरत।
6. अनुसंधान द्वारा स्थापित नवीन आयामों के आधार पर प्रभावित वर्ग को जलवायु परिवर्तन और जैव उर्जा के महत्व की देकर उनमें ज्ञान की वृद्धि कराना और नई तकनीकियों को अपनाने के लिए प्रेरित करना जिसमें कि जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों को कम किया जा सके या उनसें बचा जा सके।

ग्रामीण समुदाय की पोषण सुरक्षा एवं आमदनी में बकरी पालन का योगदान

बरखा शर्मा, डी.आर.पचौरी, रामधन घसवा, राजकुमार एवं एस एस मिश्रा

बकरी पालन हमारे देश में प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। गरीब वर्ग जो कि आर्थिक रूप से कमजोर है एवं गाय या भैंस पालने में असमर्थ है उनके लिए बकरी पालन एक वरदान है, बकरी पालन द्वारा वे अपने परिवार की दूध की आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं। इन्हीं सब कारणों से बकरी को गरीब की गाय कहा जाता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी बकरी की विशेषता एवं उपयोगिता को देखते हुए व्यक्तिगत तौर पर बकरी पालन को अपनाया था।

बकरी पालन प्रायः सभी जलवायु में कम लागत, साधारण आवास, सामान्य रख –रखाव के साथ संभव है । इसके उत्पाद की बिक्री हेतु बाजार सर्वत्र उपलब्ध है। इन्हीं कारणों से पशुधन में बकरी का एक विशेष स्थान है। बकरी पालन कम लागत एवं सामान्य देख– रेख में गरीब किसानो के जीविकोपार्जन का एक साधन है। अतः ग्रामीण युवा बकरी पालन कर अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

बकरी एक मानव उपयोगी पशु है । बकरी का दूध अधिक सुपाच्य, ताकतवर तथा अन्य पशुओं के दूध की अपेक्षा लाभदायक होता है। भारतवर्ष में पारम्परिक रूप से विभिन्न सामाजिक, आर्थिक कारणों से बकरियां मुख्यतः गरीब, सामाजिक रूप से पिछड़े लोग, भूमिहीन, सीमांत और छोटे किसानों द्वारा ही पाली जाती है। बकरी अर्थव्यवस्था के सुधार में अपने द्वारा उत्पन्न विभिन्न उत्पादों (दूध, मांस, खाल, मेंगनी तथा रेशा) से बहुमूल्य योगदान देती है ।

बात चाहें दूध की हो या मांस की हमारे देश के गरीब किसान के लिए बकरी पालन से बेहतर कोई विकल्प नहीं है। आज यह बात पूरी तरह साफ है कि गरीबी दूर करने के साधनों में बकरी पालन समाज के पिछड़े वर्ग के लिए मुनाफे का सौदा साबित हो रहा है।

बकरी पालन के लाभ

- कम लागत में यह व्यवसाय किया जा सकता है तथा कम समय में अधिक लाभ मिलता है ।
- इसमें प्रारंभिक खर्च बहुत कम होता है और हानि की संभावना भी बहुत कम होती है ।
- बकरी प्रजनन के लिए जल्दी तैयार हो जाती है तथा साल में दो बार बच्चो को जन्म दे सकती है।
- बकरियों में ब्यांत अंतराल कम होने की वजह से उत्पादन शीघ्र प्राप्त होता है ।
- बकरियों का मांस, दूध और खाल उपयोग में लाया जाता है, साथ ही इनका मांस प्रोटीन से भरपूर होता है ।
- बकरी का दूध बहुत पौष्टिक और औषधीय गुण वाला होता है।
- बकरी का दूध महिलाओं के दूध से मिलता जुलता, जल्दी पचनेवाला होता है।
- बकरी का दूध उन व्यक्तियों के लिये भी उत्तम होता है जिनको लेक्टेज ऐंजाईम से एलर्जी होती है।
- बकरियों द्वारा प्राप्त खाद अच्छी होती है ।
- सबसे महत्वपूर्ण बकरी पालन व्यवसाय महिलाओं द्वारा भी बहुत आसानी से किया जा सकता है।

बकरी की कुछ प्रमुख नस्लें

सिरोही

सिरोही नस्ल की बकरियां राजस्थान के सिरोही, अजमेर, नागौर, टोंक, सीकर, झुन्झुनु, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, राजसमन्द, भीलवाड़ा, जयपुर इत्यादि जिलों में तथा राजस्थान से सटे उत्तरी गुजरात के कच्छ एवं पालमपुर में ज्यादा पाई

जाती हैं। बकरी की यह नस्ल दूध एवं मांस दोनों के लिए उत्तम होती है। इस नस्ल की बकरियों के गले के नीचे कलंगी होती है जिससे इस नस्ल की पहचान होती है। बकरी का रंग मुख्य रूप से भूरा होता है और हल्के या भूरे रंग का धब्बा होता है तथा बहुत कम बकरियां पूरी तरह से सफेद होती है। सिरोही नस्ल की बकरियां साल में दो बार बच्चे देती हैं जिनका वजन औसतन 2–3 किलोग्राम होता है।

जमुनापारी

जमुनापारी भारत में पाई जाने वाली अन्य नस्लों की तुलना में सबसे ऊँची तथा लम्बी होती हैं। यह नस्ल सफेद रंग की होती है तथा सींग का आकार छोटा और चौड़ा होता है। इसकी नाक काफी उभरी रहती है जिससे इसे रोमन नाक या तोतापरी भी कहते हैं। इसके कान 7–8 इंच लम्बे और लटके हुये होते हैं। इस नस्ल की बकरियों के बच्चों का वजन जन्म के समय 2.5–3.0 किलोग्राम तक होता है। इस नस्ल की बकरी का पालन मांस और दूध के लिए करते हैं। इस बकरी की दूध देने की क्षमता 1–2 लीटर/दिन होती है।

बरबरी

बरबरी नस्ल दूध एवं मांस दोनों के लिये पाली जाती है जो उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा, इटावा, अलीगढ़ और राजस्थान में उत्तर प्रदेश से लगे जिलों के आसपास भारी संख्या में पाई जाती है। इन बकरियों में बच्चे देने की क्षमता अधिक होती है। बरबरी बकरियों का शरीर छोटा और ठोस होता है। इनका शरीर सफेद और उसमे छोटे हल्के भूरे रंग के धब्बे होते हैं। इनके कान छोटे और हमेशा खड़े रहते हैं। इन बकरियों की प्रजनन क्षमता बहुत ही अच्छी होती है। यह साल में दो बार बच्चे देती है। यह 20 प्रतिशत सिंगल, 65 प्रतिशत मामलों में जुड़वाँ और 15 प्रतिशत तीन बच्चे देती है । यह बौनी नस्ल की बकरी है जिसे गाय की तरह स्टाल फीडिंग कर भी पाल सकते हैं और इसलिए यह बकरी आमतौर पर शहरो में पाई जाती है। इन बकरियों को मांस और दूध के लिए पाला जाता है। इस बकरी का मांस बहुत ही स्वादिष्ट होता है और यह औसतन 1 किलो दूध प्रतिदिन देती है।

बीतल

बीतल हरियाणा और पंजाब के गुरदासपुर, अमृतसर और फिरोजपुर जिलों में पाई जाती है। बीतल मुख्य रूप से 80 प्रतिशत काली या भूरी रंग की होती है और इनके शरीर में सफेद या सुनहरे रंग के छोटे–छोटे धब्बे होते हैं। इसके शरीर का वजन और ऊंचाई जमुनापारी बकरी से कम होती है इनके कान लम्बे और थोड़े चौड़े तथा नीचे की तरफ लटके हुए होते हैं। इनका सींग छोटा और पीछे की तरफ मुड़ा होता है। बीतल बकरियां दूध और मांस के लिए ज्यादातर इस्तेमाल में ली जाती है इनके दूध देने की क्षमता बहुत अधिक होती है, प्रतिदिन 1.5–2.0 किलो तक दूध देती हैं। ये साल में एक बार बच्चे देती हैं और इनके बच्चे का वजन 2.0–2.5 किलो तक होता है। यह 41 प्रतिशत सिंगल, 50 प्रतिशत जुड़वाँ और 9 प्रतिशत तीन बच्चे देती है। बीतल प्रायः सभी जलवायु क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पायी गयी है इसलिए यह बकरी पालन व्यवसाय के लिए अच्छी मानी जाती है।

सूरती

सूरती नस्ल की बकरियां गुजरात के सूरत और बड़ौदा में पाई जाने वाली नस्ल है। इस नस्ल की बकरियां छोटी होती हैं। इनके छोटे– छोटे कान और बाल होते हैं। यह सफेद रंग की होती हैं और इनके शरीर का बाल चमकीला होता है। सूरती नस्ल की बकरियां बहुत ही लोकप्रिय हैं क्योंकि इनकी दूध देने की क्षमता बाकि बकरियों से अच्छी होती हैं। इन्हें

ज्यादातर लोग दूध के लिए पालते हैं। यह बकरियां रोज लगभग 2 किलो दूध देती हैं, परन्तु इनकी चलने की क्षमता बहुत कम होती है। यह ज्यादा दूर नहीं चल सकती इसलिए लोग इन्हें ज्यादातर अपने घर में ही पालते हैं।

ओस्मानाबादी

ओस्मानाबादी नस्ल महाराष्ट्र, तेलंगाना और कर्नाटक में पाई जाती है। इनका रंग 70 प्रतिशत काला और 30 प्रतिशत सफेद या भूरे रंग का होता है। इनका शरीर का आकार भी बड़ा होता है और पैर लम्बे होते हैं। इनकी प्रजनन क्षमता अच्छी होने के कारण यह बहुत ही लोकप्रिय बकरी की नस्ल में से एक है। यह 16 से 18 महीने की आयु में बच्चा देती है तथा साल में दो बार बच्चे दे सकती है। ओस्मानाबादी बकरियों को मांस के लिए इस्तेमाल में लाया जाता है।

जखराना

जखराना नस्ल की बकरियां राजस्थान के अलवर जिले के आसपास के गांवों में पाई जाती हैं। इस नस्ल की बकरियां बड़ी होती हैं। इनका रंग काला और शरीर पर सफेद धब्बे पाए जाते हैं। इनके कान लम्बे होते हैं। इस नस्ल की बकरियां बीतल बकरियों से काफी मिलती–जुलती हैं मगर ये नस्ल बीतल से बड़ी होती है। इन बकरियों का इस्तेमाल दूध उत्पादन के लिए करते हैं, यह प्रतिदिन 1.5–2.0 लीटर दूध देती है साथ ही इन बकरियों की मांस और खाल भी बहुत लोकप्रिय है। यह साल में एक बार बच्चे देती है, इनके बच्चे का वजन 1.5–2.0 किलो तक होता है और यह 70 प्रतिशत सिंगल और 30 प्रतिशत जुड़वाँ बच्चे पैदा करती है।

सोजत

सोजत नस्ल की बकरी राजस्थान के सोजत, फालोदी, पिपर, जोधपुर में पाई जाती है। इस बकरी को राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा) द्वारा नस्ल के रूप में पंजीकृत नहीं किया गया है। इस नस्ल की बकरी को मांस के लिए पाला जाता है। इस बकरी का रंग सफेद होता है और इनके शरीर में छोटे –छोटे काले धब्बे होते हैं। इनके कान 8–10 इंच तक लम्बे होते हैं। यह बकरी साल में 2 बार बच्चे देती है। यह 40 प्रतिशत सिंगल और 60 प्रतिशत जुड़वाँ बच्चे पैदा करती है।

ब्लैक बंगाल

ब्लैक बंगाल नस्ल पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, उड़ीसा, आसाम में पाई जाने वाली नस्ल है। इस नस्ल की बकरी ज्यादातर काली, भूरी और सफेद होती है। इनका सींग 4–5 इंच तक बड़ा और आगे की तरफ निकला हुआ होता है। इसका शरीर गठीला होने के साथ–साथ आगे से पीछे की और ज्यादा चौड़ा तथा बीच में अधिक मोटा होता है। इनके कान छोटे व खड़े होते हैं। इन बकरियों की प्रजनन क्षमता बहुत ही अच्छी होती है। इस नस्ल का मेमना 8–10 माह की उम्र में वयस्कता प्राप्त कर लेता है तथा औसतन 15–16 माह की उम्र में प्रथम बार बच्चे पैदा करने लायक हो जाती है। इस नस्ल के बकरे का मांस बहुत ही ज्यादा स्वादिष्ट और इनकी खाल सब बकरियों से अच्छी होती है।

हमारे देश में प्राचीन काल से ही बकरी पालन होता चला आ रहा है। बकरी दूध प्राप्त करने का सबसे सस्ता साधन है। ग्रामीण एवं शहरी इलाकों के लिए बकरी का दूध मीठा, पोषक और औषधीय कारक होता है। विश्व के विभिन्न देशों में पाई जाने वाली बकरियों की संख्या चीन के बाद सर्वाधिक 14 करोड़ 89 लाख भारत में हैं। इनसे वर्ष 2018–19 में लगभग 6098.73 हजार टन दूध उत्पादन हुआ जो देश के कुल दूध उत्पादन का लगभग 3 प्रतिशत था।

1. **बकरी के दूध का रासायनिक संघटन** बकरी के दूध में सभी पोषक तत्व जैसे वसा, प्रोटीन, लैक्टोज व खनिज पदार्थ पाये जाते है। परंतु इनकी मात्रा बकरी की नस्ल, आयु, दूधकाल की दशा व ऋतु आदि पर निर्भर करती है। कभी कभी खान पान के स्तर का भी दूध के संघटन पर प्रभाव देखा गया है ।

विभिन्न नस्लों की बकरी के दूध के संघटन की प्रतिशत मात्रा को निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

नस्ल	पानी	वसा	कुल ठोस पदार्थ	वसा रहित ठोस पदार्थ
जमुनापारी	87.27	4.82	12.73	7.91
बारबरी	86.25	5.14	13.55	8.41
सिरोही	88.51	3.89	11.64	7.75
कच्छी	88.89	3.61	11.17	7.60
मारवाड़ी	88.64	3.38	11.35	7.84
जखराना	87.94	4.39	12.06	7.69

1. **दूध की संरचना** इसके दूध में पानी की मात्रा 81.9 – 88.8 प्रतिशत, कुल ठोस पदार्थ 11.17 – 18.07 प्रतिशत, वसा 3.61 – 7.93 प्रतिशत, प्रोटीन 3.32 – 4.97 प्रतिशत, लैक्टोज या दूध शर्करा 4 – 4.5 प्रतिशत तथा ऐश, अम्लता व क्लोराइड भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।
2. **वसा तथा इसके गुण** बकरी के दूध की वसा में गोलों का आकार गाय के दूध के समान ही होता है, बकरी के दूध में 82.7 प्रतिशत वसा के गोलों का आकार 4.5 मि.ली. माईक्रान पाया गया है ।
3. **प्रोटीन तथा इसके गुण** बकरी के दूध की कुल प्रोटीन में केसीन की मात्रा सर्वाधिक तथा गाय के दूध से अधिक होती है। इस केसीन में आवश्यक अमीनों अम्ल पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं, लेकिन ट्रिप्टोफॉन नामक अमीनों अम्ल की मात्रा कुछ कम पायी जाती है ।
4. **खनिज तत्वों की मात्रा** बकरी के दूध में सम्पूर्ण खनिज तत्व पाये जाते हैं। इन तत्वों में कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम, फॉस्फेट व क्लोराइड प्रमुख हैं। इसमें मैग्नीशियम तथा कैल्शियम की मात्रा गाय के दूध से अधिक होती है।
5. **पोषणमान तथा चिकित्सकीय महत्व** बकरी के 100 ग्राम दूध में 72 किलो कैलोरी उर्जा प्राप्त होती है । बकरी के दूध का सेवन बच्चों एवं पेट के रोगियों, वृद्ध एवं क्षय रोग से ग्रसित लोगो के लिए विशेष लाभकारी है।

''भाव प्रकाश'' नामक आयुर्वेद की पुस्तक में बकरी के दूध का वर्णन इस प्रकार किया गया है :–

छाग कशायं मधुरं भीतं ग्रहि तथा
लघु रक्तापित्तातिसाहंन क्षयका सज्वारापहम ।।
स्तोकम्बुपाना द्वव्या मात्सर्व रोगा पहंपय ।

अर्थात बकरी का दूध कसैला, मधुर, शीतल, गराही, हल्का और रक्तापित अतिसार, क्षय, खांसी तथा ज्वर को नष्ट करता है। बकरी चटपटे तथा कड़वे पदार्थों को खाती है, पानी थोड़ा पीती है और फिरने का अधिक परिश्रम करती है, इस कारण बकरी का दूध सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है।

बकरी के दूध से प्राप्त होने वाले लाभ

- बकरी का दूध बच्चों, बुजुर्ग एवं बीमार व्यक्तियों के लिए आदर्श भोजन माना जाता है।
- बकरी के दूध के नियमित प्रयोग से मनुष्य की पाचन क्षमता ठीक रहती है ।
- बकरी के दूध में प्रोटीन जटिल रूप में नहीं पाई जाती है। जबकि गाय के दूध एवं उसके उत्पादों में प्रोटीन की संरचना जटिल होती है। बकरी के दूध के प्रयोग से ऐसे रोगों में राहत मिलती है एवं इससे एलर्जी भी नहीं होती है ।
- बकरी के दूध से दही मुलायम बनती है ।
- बकरी के दूध में उपस्थित वसा कणिकाओं का आकार गाय या भैंस के दूध की अपेक्षा छोटा होता है । अतः बकरी का दूध आसानी से पच जाता है।
- बकरी के ताजा दूध में जीवाणुओं की संख्या गाय के दूध की तुलना में काफी कम होती है।
- बकरी का दूध गैस्ट्रिक अल्सर के उपचार में लाभप्रद होता है तथा जिन व्यक्तियों को एसिडिटी की शिकायत रहती है उन्हें आराम पहुंचाता है।
- बकरी चरने के दौरान विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों की पत्तियां आदि का सेवन करती है जिससे कि बकरी के दूध में औषधीय गुण आ जाते हैं।
- बकरी के दूध में विभिन्न खनिज लवण उपस्थित रहते हैं, जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम आदि।
- डायबिटीज एवं लीवर संबंधित बीमारियों के उपचार में भी बकरी का दूध उपयोगी सिद्ध होता है।

बकरी के दूध का उपयोग सामान्यतः प्रचलन में नहीं है इसलिए इसका दूध डेरी वाले भी नहीं लेते हैं परंतु कुछ दूधवाले बकरी का दूध गाय व भैस के दूध में मिलाकर बेचते हैं। बकरी के दूध से भी स्वास्थ्यवर्धक भोज्य पदार्थ बनाए जा सकते हैं जैसे पनीर, चीज, श्रीखण्ड, छैना तथा छैना आधारित उत्पाद, खोआ, घी, पनीर, छाछ पेय आदि बनाए जा सकते हैं। बकरी के दूध से निर्मित विभिन्न उत्पादों का वर्णन निम्न प्रकार से है।

बकरी के दूध से तैयार विभिन्न खाद्य् उत्पाद

1. **पनीर** बकरी के दूध से उच्च गुणवत्ता वाला पनीर तैयार किया जा सकता है। बकरी के दूध से बने पनीर में किसी प्रकार की गंध भी नहीं आती है। बकरी के दूध से बने पनीर व गाय व भैंस के दूध से बने पनीर में अंतर कर पाना कठिन होता है। बकरी के दूध से निर्मित पनीर गाय व भैंस के दूध से निर्मित पनीर की तुलना में अधिक मुलायम होता है। बकरी के दूध से बने पनीर को पैक कर के तीन दिन तक रेफ्रिजरेटर में सुरक्षित रखा जा सकता है।

   बकरी के दूध को पहले बारीक मलमल के कपड़े (छन्नी) द्वारा छान लिया जाता है। दूध को गैस चूल्हा पर हिलाते हुए गर्म करते हैं। तापक्रम 89–90 डिग्री सेण्टीग्रेट होने पर 0.15 प्रतिशत की दर से सिट्रिक अम्ल पाउडर छिड़क कर दूध में भलीभांति मिलाया जाता है और दूध फट जाता है। 4 – 5 मिनिट तक स्थिर रखने के बाद इसे साफ मलमल के कपड़े द्वारा छान लिया जाता है। कपड़े में एकत्रित पनीर को गांठ लगाकर समतल स्थान पर प्लेट आदि में रखकर ऊपर से अन्य समतल प्लेट पर वजन रखकर करीब 30–40 मिनिट तक के लिए दबा दिया जाता है। पनीर को आवश्यकतानुसार टुकड़ो में काटकर प्रयोग में लाया जा सकता है ।

2. **योगहर्ट** बकरी के दूध में गाय का सपरेटा दूध पाउडर मिलाकर योगहर्ट बनाया जा सकता है। इसे स्ट्रेपटोकोकस थर्मोफिलस एवं लैक्टोबैसीलस वल्गेरिकस के मिश्रित कल्चर के साथ किण्वीकृत करके तैयार किया जा सकता है।

3. **घी** बकरी के दूध को प्रायः घी बनाने के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है। जिसका मुख्य कारण इसकी वसा के कणों का छोटा होना है, जो क्रीम निकालने में परेशानी पैदा करते हैं। बकरी के दूध से निर्मित घी ग्रीस जैसा बनता है। इसका रंग हरा सफेद होता है।

4. **खोआ** खोआ का उपयोग विभिन्न प्रकार की मिठाईयां बनाने में होता है। बकरी के दूध से तैयार खोआ मुलायम नम तथा खारा स्वाद वाला होता है। बकरी और भैंस के दूध को बराबर अनुपात में मिलाने से उच्च गुणवत्ता वाला खोआ तैयार किया जा सकता है । पॉलीथिन बैग में पैक किए खोये को कमरे के तापमान पर लगभग 3–4 दिन तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

5. **दुग्ध पाउडर** बकरी के दूध को सुखाकर पाउडर के रूप में बेचा जा सकता है।

6. **दही** बकरी के दूध को 10 मिनिट उबालकर 35 – 37 डिग्री सेण्टीग्रेट तापमान पर ठण्डाकर उसमें 10 प्रतिशत स्टेप्टोकोकस पेरासिट्रोवोरस या 0.25 प्रतिशत स्ट्रेप्टोकोकस थर्मोफिलस तथा 0.25 प्रतिशत लेक्टोबैसिलस वल्गेरिकस तथा 0.5 प्रतिशत ग्रह निर्मित जामन मिलाकर लगभग 12 घण्टे के लिए रखकर दही तैयार करते है।

7. **आइस्क्रीम** बकरी के दूध से गाय व भैंस के दूध के समान ही आइस्क्रीम भी तैयार की जा सकती है । बकरी के दूध से तैयार आइस्क्रीम बहुत स्वादिष्ट होती है।

8. **श्रीखण्ड** दही से तैयार किया जाता है। दही को एक महीन कपड़े में बांधकर लटका दिया जाता है। पानी निकल जाने के बाद बचा दही चक्का कहलाता है। इसमें शक्कर में इलायची डालकर फ्रिज में ठण्डा होने के लिए रख दिया जाता है ।

9. **छैना** छैना से अनेक प्रकार की बंगाली मिठाईयां तैयार की जा सकती है। जैसे रसगुल्ला, चमचम एवं संदेश। छैना बनाने की विधि पनीर बनाने के समान ही है।

10. **चीज** बकरी के दूध से मुलायम एवं अर्ध कठोर चीज निर्मित की जाती है । मीडियम चैन फैटी एसिड्स का अनुपात इसमें अधिक होने से तीखी महक होती है , जिसके लिए यह चीज जानी जाती है । बकरी के दूध की 10:25 मात्रा यदि भैंस के दूध में मिलाकर यह चीज बनाई जाये तो अच्छे गुणों वाली एवं महक वाली चीज तैयार हो जाती है।

बकरी के दूध का पाचन मनुष्य में अधिक आसानी से होता है। बकरी के दूध में केसिन प्रोटीन के कारण दही नरम बनता है। वसा के ग्लोब्यूल का आकार छोटा तथा एग्लूटिनिन नहीं पाया जाता है तथा मध्यम व छोटे चैन के फैटी एसिड पाये जाते हैं। इसके कारण बकरी का दूध गाय व भैंस के दूध से अधिक सुपाच्य होता है। साथ ही बकरी के दूध में औषधीय गुण अत्यधिक पाये जाते हैं, क्योकि बकरी जंगल में चरने के दौरान विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों की पत्तियों का भी सेवन करती है। इस वजह से अधिक औषधीय गुण आ जाते हैं।

अंगोरा खरगोश के रेशों से निर्मित शॉल - एक सफल प्रयास

अजय कुमार, डी.बी. शाक्यवार, ए. एस. एम. राजा', विनोद विष्णु कदम एवं एन. शणमुगम

अंगोरा खरगोश एक बहुआयामी एवं उपयोगी पशुधन है यह विकासशील देशों की ऊन व मांस की आवश्यकता की पूर्ति करने में सक्षम है। अंगोरा खरगोश के पालन का प्रादुर्भाव टर्की के अंकारा प्रदेश में माना जाता है। 17 वीं सदी में यह इंग्लैण्ड व फ्रांस में फला–फूला तथा 18 वीं सदी में यूरोप के अन्य देशों जैसे – जर्मनी, बेल्जियम आदि में फैल गया। भारत में इसके बीजीय उत्पादन का केन्द्र वर्ष 1962 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के तत्वावधान में केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान के उत्तरी शीतोष्ण केन्द्र, गड़सा, कुल्लू (हि.प्र.) में किया गया। यह केन्द्र पशु पालकों को खरगोश पालन हेतु उचित दर पर बीजीय पशु उपलब्ध कराता है। अंगोरा रेशे अपने प्राकृतिक गुण जैसे ऊन के सापेक्ष कम मोटाई व भार अधिक मुलायमित तथा 3–4 गुणा अधिक उष्मारोधी गुणों के फलस्वरूप उच्च गुणवत्ता के परिधानों के लिये उपयुक्त हैं। अंगोरा खरगोश प्रति किलो सापेक्ष भार पर भेड़ से 6.4 गुणा अधिक ऊन उत्पादित करता है तथा इसके लिए किसी भी प्रकार की चरागाह भूमि की आवश्यकता नहीं होती है। इनका पशुपालन छोटे फार्म हाऊस यहाँ तक कि मकान के पीछे के आँगन में किया जा सकता है। रेशों के उत्पादन हेतु जर्मन अंगोर नस्ल के खरगोश सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं। इनसे 1550/– प्रति किलो मूल्य की 0.6–0.9 किलोग्राम ऊन प्रतिवर्ष प्राप्त की जा सकती है। संगठित व्यवसायिक फार्म प्रबंधन द्वारा अंगोरा खरगोश पालन से लागत का 92 प्रतिशत तथा असंगठित क्षेत्र में 62 प्रतिशत तक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। **(गुप्ता, डी० सी०, व अन्य, 2005)**. अंगोरा खरगोश पालन के लिए वातावरण का तापमान 10–25^{o}C तथा आर्द्रता 60–80 प्रतिशत तक उपयुक्त होता है। जोकि देश में पर्वतीय क्षेत्र के राज्यों में उपलब्ध है। अतः देश में अंगोरा खरगोश पालन का कार्य हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड व पूर्वोतर प्रदेशों – सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश व उत्तर–पूर्वी राज्य, पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग क्षेत्र में स्थापित हुआ। इन प्रदेशों में खरगोश पालन महिलाओं, भूमिहीन किसानों तथा बेरोजगार युवाओं के लिए स्वरोजगार का अवसर प्रदान करता है।

अंगोरा ऊन

ऊनी शॉलें अपने विशिष्ट गुणों जैसे गरमाहट व नरमता के कारण शीत ऋतु में बाहरी परिधान के रूप में उपयोग किये जाते हैं। शरीर में आरामदायक परिस्थिति को बनाये रखने के लिए वातावरण का तापमान, आर्द्रता व हवा की गति प्रमुख कारक हैं। सामान्य वातावरणीय परिस्थितियों में व्यक्ति अपनी त्वचा के तापमान 33–35^{o}C पर पसीना उत्सर्जन किये बिना अत्यधिक आरामदायक महसूस करता है। जिसके लिए बाहरी परिधि में तापमान 24^{o}C व आर्द्रता (RH) 50% होना आवश्यक होती है। **(एल्डर, एच० एम०, 1971)**. व्यक्ति द्वारा आवरण के रूप में उपयोग में लाये जाने वाले परिधान में उपयुक्त रेशों, कपड़े की मोटाई व रेशों व कपड़े में उपलब्ध हवा, परिधान से प्रदत्त उष्मारोधी गुण (गरमाहट) प्रमुख कारक हैं। अपने मुलायमियत व गरमाहट के कारण शॉल शीत ऋतु में मनुष्यों को ठंड से बचाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शॉलों का उत्पादन भारत में अनादि काल से किया जा रहा है, जिसके उपयोग का उल्लेख रामायण व महाभारत में भी मिलता है। आज फैशन की माँग के अनुरूप, विविधताओं के समायोजन के साथ शॉल उद्योग प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। अंगोरा

रेशों के विशिष्ट गुणों के कारण इसमें अत्यधिक व्यवसायिक उपयोग क्षमता है व इसके सम्मिश्रित उत्पाद उच्चतम उष्मारोधी गुण युक्त होते हैं तथा हमें गर्म परिधान के स्वरूप में ठंडे मौसम में आवश्यक गरमाहट प्रदान करते हैं। भारत में इन रेशों का उपयोग कम होने के कारण इनका प्रसंस्करण केवल लघु उद्योग तक सीमित है। देश में हिमाचल प्रदेश का कुल्लु घाटी क्षेत्र पारम्परिक शॉल उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर महिला कारीगरों द्वारा हथकरघे पर आकर्षक डिजाइन व पैर्टनों पर कम वजन के शॉलों का विनिर्माण किया जाता है। क्षेत्र में शॉल निर्माण का कार्य कुटीर उद्योग के रूप में संचालित होता है व इनकी अपनी सहकारी समितियाँ व कार्यशालाएँ हैं, जिनमें हिमाचल प्रदेश हथकरघा एंव हस्तशिल्प कॉपरेटिव सोसाइटी, हिमबुनकर भवन, भुन्तर व उत्तरी भुन्तर तहसील के शमशी में स्थित भुट्टी बुनाई कॉपरेटिव सोसाइटी प्रमुख हैं। इन्होंने कुल्लू शॉलों की पारम्परिक्ता व गुणवत्ता को बनाये रखा है। इनके शोरूम हिमाचल के लगभग सभी पर्यटन स्थलों जैसे कुल्लू, मनाली, सुन्दरनगर, मण्डी, पालनपुर आदि में संचालित हैं। जहाँ महिलाओं द्वारा निर्मित ऊनी शॉलों, अंगोरा सम्मिश्रित शॉलों, पश्मीना शॉलों, मफलरों व अन्य ऊनी हस्तशिल्प उत्पादों का विपणन भुटिको ब्राण्ड के नाम से करते हैं। यहाँ के उत्पाद मुख्यतः क्षेत्र की उत्पादित ऊन, अंगोरा रेशों व लद्दाख से प्राप्त पश्मीना से बने होते हैं। इनके विभिन्न प्रकृति जनित रेशों से निर्मित शॉलों का निर्धारित विक्रय मूल्य ऊनी शॉलः रूपये 700/–, अंगोरा समिश्रित शॉल : रूपये 1200/– से 1500/– व पश्मीना शॉलः रूपये 6000/– होता है। अपनी शुद्धता व निर्धारित व्यवहारिक कीमतों व अधिक गरमाहट व मुलायमियत युक्त गुणों के कारण यहाँ के अंगोरा समिश्रित शॉल देशी व विदेशी पर्यटकों में खूब पसंद किये जाते हैं।

अंगोरा रेशों का उत्पादन

अंगोरा रेशे अपने विशिष्ट गुणों व कम उपलब्धता के फलस्वरूप विशिष्ट रेशों की श्रेणी में वर्गीकृत किये जाते हैं ये रेशे मोटाई में पश्मीना समतुल्य, हल्के, अधिक धवल व मुलायम होते हैं। ये रेशें अंगोरा नस्ल के खरगोश के बाल होते हैं व इनकी बड़वार काफी अधिक होती है तथा खरगोश से प्रत्येक 2–3 माह में रेशे प्राप्त किये जाते हैं। तीन माह से अधिक होने पर रेशे स्वतः झडने लगते हैं। भारत में अंगोरा खरगोश का पालन ठण्डे प्रदेशों – हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, जम्मू व कश्मीर तथा पूर्वोत्तर राज्यों में किया जाता है। खरगोश पालन व्यवसाय पूर्णतः असंगठित क्षेत्र में किया जाने वाला उपक्रम है। देश में अंगोरा खरगोश से औसतन 260 से 450 ग्राम प्रति खरगोश पाया जाता है। भारत में रेशों का वार्षिक उत्पादन विश्व में अंगोरा रेशों के कुल उत्पादन का केवल 1.7 प्रतिशत ही होता है। देश में उत्पादित कुल विशिष्ट रेशों के उत्पादन की मात्रा लगभग 60 टन में अंगोरा रेशे 25 प्रतिशत तक योगदान करते हैं।

अंगोरा रेशों के भौतिक गुण एवं विशिष्टता

अंगोरा रेशें अत्यधिक महीन व व्यास/मोटाई में काफी समान होते हैं, इनका औसत व्यास 12 से 14 माइक्रोमीटर होता है तथा इनकी लम्बाई 6 – 8 सेमी. तक होती है। अपने कम घनत्व के कारण (1.13 ग्राम/सेमी^{3})ये भेड़ से प्राप्त ऊन (1.32 ग्राम/सेमी^{3}) से वजन में हल्के होते हैं। इसलिए इनके बने उत्पाद अत्यधिक मुलायम व फुलावयुक्त होते हैं। अन्य ऊनी रेशों की भांति अंगोरा रेशों की सतह पर भी स्केल होते हैं, अपितु ये इतना नजदीक होते हैं कि अंगोरा रेशों की सतह अन्य रेशों की तुलना में अत्यधिक चिकनी होती है। जो धागा कताई के प्रक्रम में एक अवगुण है तथा शत–प्रतिशत अंगोरा रेशों से कपड़ा बनाना सम्भव नहीं है व प्रसंस्करण के दौरान विद्युत चार्ज भी उत्पन्न होता है।

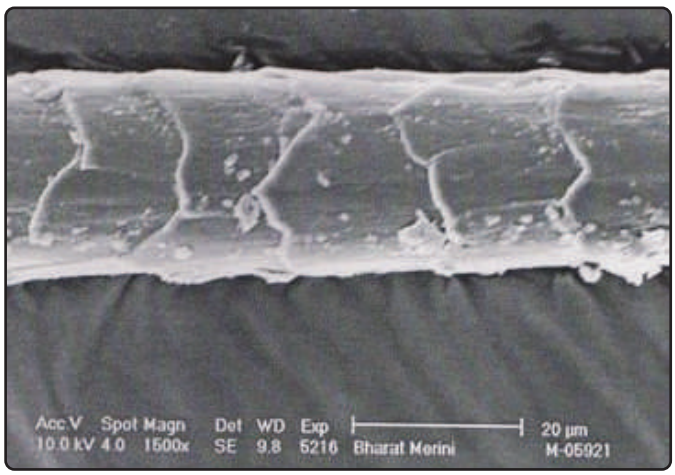

भारत मरीनो ऊन

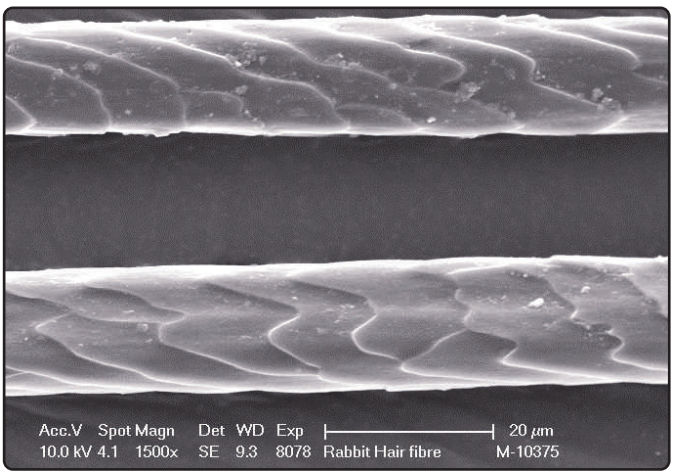

अंगोरा खरगोश रेशे

चित्र–1 : भारत मरीनो ऊन व अंगोरा खरगोश के रेशों की सतह (SEM चित्र)

अंगोरा रेशों की अनुप्रस्थ आकृति अण्डाकार से चौकोर होती है तथा इनमें सीढ़ीनुमा बाल सुरंगता भी पाई जाती है। महीन अंगोरा रेशों (8–12 माइक्रोन) में मेरूदण्ड समान एकल क्रमिक बाल सुरंगता तथा मोटे अंगोरा रेशों (15–20माइक्रोन) में बहुसंखीय क्रमिक बाल सुरंगता होती है। रेशों की बाल सुरंगता के अंदर फंसी वायु ही अंगोरा रेशों को अधिक गरमाहट प्रदत्त गुण से युक्त करती है। अंगोरा रेशे ऊन की अपेक्षा 3–4 गुणा अधिक उष्मारोधी गुण युक्त होते हैं तथा इसीलिए इनके सम्मिश्रण से तैयार शॉल अधिक गरमाहट प्रदान करती है।

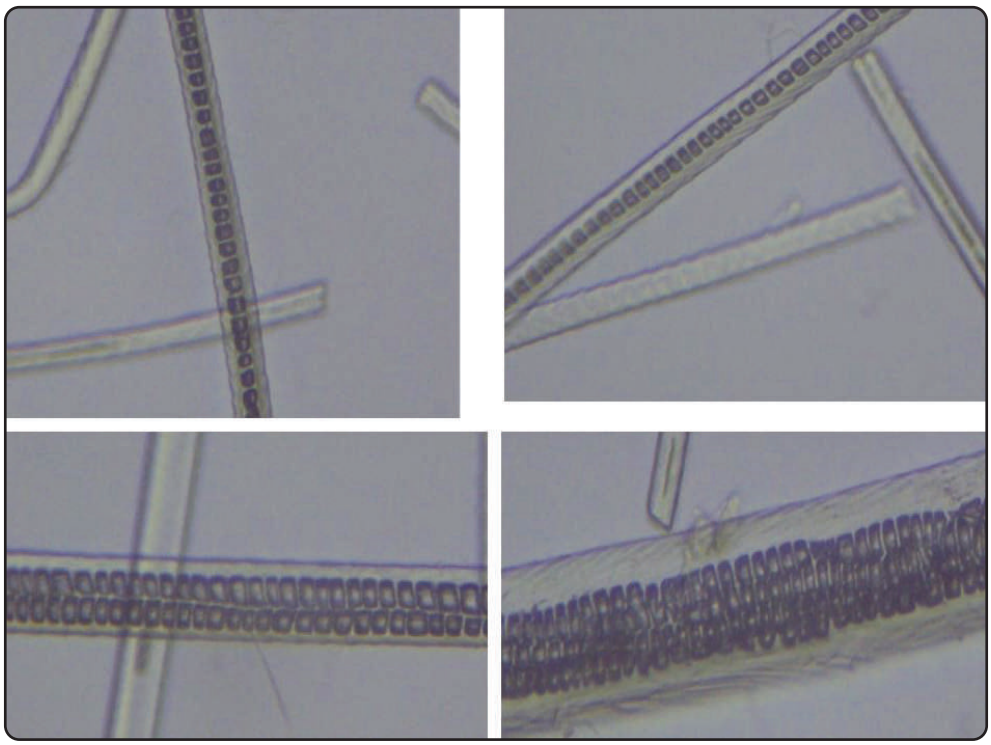

चित्र–2 : एकल व बहुसंखीय क्रमिक बाल सुरंगता युक्त अंगोरा रेशे

अंगोरा रेशों का धागा बनाने के क्रम में प्रसंस्करण

अंगोरा रेशों के विशिष्ट गुण जैसे चमकदार, उष्मारोधी व मुलायमियत व धवल रंग उसे परिधान विनिर्माण के लिए उपयुक्त बनाते हैं। धागा बनाने के क्रम में मुख्यतः रेशों की महीनता ही लगभग 80 प्रतिशत तक कताई क्षमता, प्रसंस्करण तकनीकी व उससे बनने वाले उत्पाद का निर्धारण करती है। इसके अतिरिक्त रेशों की लम्बाई (15–20 प्रतिशत तक) भी धागा बनाने के क्रम में महत्वपूर्ण कारक है। जो रेशों की कताई मशीन व बनने वाले धागे की गुणवत्ता का निर्धारण करती है। अंगोरा रेशों की महीनता/मोटाई (12–14 माइक्रो मीटर) उपयुक्त है पर कम लम्बाई (50–60सेमी.) के कारण ये पतले धागे बनाने हेतु वर्स्टेड कताई मशीन में प्रसंस्कृत नहीं किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे स्केल तथा अन्य ऊनी रेशों की अपेक्षा वलय न होने की वजह से धागा बनाने के क्रम में रेशों के मध्य बहुत कम अंतर–सहयोग होता है। ऊन के सापेक्ष अंगोरा रेशों के मध्य अंतर–सहयोग 4–5 गुना तक कम होता है, फलस्वरूप इनकी कताई क्षमता बहुत खराब होती है व इनसे महीन गुणवत्ता युक्त धागा तैयार नहीं किया जा सकता है। प्रसंस्करण के दौरान इनकी चिकनी सतह के कारण अत्यधिक विद्युतीय चार्ज उत्पन्न होता है एंव प्रसंस्करण के दौरान मशीनों के रोलरों में लैपिंग (तहीकरण) कताई प्रक्रिया को काफी दुष्कर बना देती है। **(गुप्ता, एन० पी० व अन्य, 2002).** यदि फिर भी येन–केन इससे शत–प्रतिशत अंगोरा धागा व परिधान निर्माण कर भी लिया जाता है तो रेशों के मध्य कमतर अंतर घर्षण बल होने के कारण उससे निरन्तर रेशो का झड़ना होता रहता है। अतः बेहतर प्रसंस्करण व परिधान उपयोग हेतु अंगोरा रेशों को ऊन या अन्य रेशों के साथ सम्मिश्रित कर गुणवत्ता युक्त धागा तैयार किया जाता है।

इसी क्रम में देश में उत्पादित महीन ऊन जिसकी औसत लम्बाई आस्ट्रेलियन मरीनों ऊन के रेशों (80–110 मिमी) से लगभग आधी (50–60 मिमी) होती है तथा अंगोरा रेशों के सम्मिश्रण पर कोई भी अध्ययन नहीं किया गया। संस्थान में उत्पादित अंगोरा रेशों के देशी ऊन के साथ धागा बनाने हेतु प्रसंस्करण व शॉल निर्माण के अध्ययन में संस्थान द्वारा महीन ऊन के लिए विकसित संकर–नस्ल भारत मेरिनो व संस्थान के उत्तरी शीतोष्ण केन्द्र, गड़सा में अंगोरा रेशों को 28:72, 40:60 व 60:40 अनुपात में सम्मिश्रित कर प्रसंस्करण किया गया। क्योंकि अंगोरा रेशों (60–80 मिमी) व भारत मेरिनों ऊन (80–100 मिमी) की औसत लम्बाई काफी कम होती है अतः सामान्य वर्स्टेड कताई प्रसंस्करण ईकाई में इनका प्रसंस्करण सम्भव नहीं हो पाता है। इसलिए प्रयोग में इनकी कताई हेतु एक समान सम्मिश्रण व कार्डिंग के दौरान रेशों को टूटने से बचाने के लिए कम गति की कार्डिंग मशीन में प्रसंस्करण कर स्लाइवर (पूनी) तैयार की गई। तत्पश्चात् सेमी–वर्स्टेड कताई मशीनों जैसे गिल बॉक्स, रोविंग फ्रेम व रिंग फ्रेम पर प्रसंस्करण कर क्रमशः 2/35 Nm, 2/44 Nm व 2/48 Nm काउंट का धागा बनाया गया। कपड़ा बनाने के क्रम में पालिएस्टर व ऊन सम्मिश्रित धागे (40:60) को ताने तथा तैयार किये हुए तीनों सम्मिश्रित अंगोरा धागों को बाने के रूप में उपयोग कर शॉल बनाये गये हैं।

संस्थान द्वारा अंगोरा शॉल का निर्माण

शॉल के निर्माण में अंगोरा रेशों का प्रतिभाग बढ़ने पर शॉल में उष्मारोधी गुण बढ़ता है व शॉल की मुलायमियत भी बढ़ती है। परन्तु उसकी रंजन क्षमता कम होती जाती है।**(राजा ए० एस० एम० व अन्य, 2002).** उच्च उष्मारोधी शॉल निर्माण हेतु वस्त्र निर्माण एवं वस्त्र रसायन विभाग ने अंगोरा सम्मिश्रित शॉलों के निर्माण में अधिकतम अंगोरा रेशों का उपयोग के प्रयोजन में अंगोरा रेशों को भारत मरीनों ऊन के साथ 50:50, 60:40,70:30 प्रतिशत के अनुपात में सम्मिश्रित कर, 2/44 Nm काउंट का धागा तैयार किया गया। तत्पश्चात् ताने व बाने में एक ही सम्मिश्रण के धागे का उपयोग कर शॉलों का

हथकरघे पर निर्माण किया गया। तैयार शॉल की जाँच में अंगोरा रेशे व भारत मेरीनो (40:60) शॉल कम–तनाव सम्बंधित गुणों में बेहतर पाये गये। हालांकि शॉलों की गुणवत्ता मानक का मुख्य गुण उनकी गरमाहट के क्रम में अंगोरा रेशों की अधिक मात्रा युक्त (70 प्रतिशत) शॉल सर्वाधिक उष्मारोधी (2.12 Tog) पाये गये। अपितु इस मिश्रण के शॉलों में अंगोरा रेशों की अधिक मात्रा के कारण रेशों की गोलियाँ (neps) व अन्य असमानता (irregularities) अत्याधिक थी। **(वार्षिक प्रतिवेदन वर्ष 2010–11)** शॉल के उपयोग के दौरान बनने वाली रेशों की गोलियों की झड़ने की प्रक्रिया को कम करने के लिए शॉल को प्रोटिएज इन्जाम से उपचरित कर इसकी मुलायमियत बढ़ाने के लिए सिलिकोन मृदुकर (softener) का प्रयोग सफल रहा। परिणामस्वरूप उपचारित शॉलों में रेशों की गोलियाँ कम बनी व रेशों का झड़ना भी कम हो गया। साथ ही, शॉलों की औसत मोटाई बढ़ने से उसकी मुलायमियत भी बढ़ गई। **(वार्षिक प्रतिवेदन वर्ष 2012–13)** इस प्रयोग के अनुसार अंगोरा रेशों के उत्पाद में उपयोग के समय रेशों के झड़ने की प्रक्रिया को घटाया जा सकता है। इसलिए उच्च गुणवत्ता युक्त अंगोरा शॉलों के निर्माण में 20–40 प्रतिशत तक ही अंगोरा रेशों का उपयोग हेतु उचित पाया गया। **(शाक्यवार, डी० बी० व अन्य, 2012).**

देशी ऊन व अंगोरा सम्मिश्रित शॉलों का व्यवसायिक विश्लेषण

देश के उत्तरी शीतोष्ण राज्यों–जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व उत्तराखण्ड में उत्पादित ऊन के रेशों की औसत लम्बाई अपेक्षाकृत कम (60–80 मिमी) होती है। सम्मिश्रण में अंगोरा रेशों की मात्रा बढ़ाने से प्रथमदृष्टया कम गुणवत्ता के धागे तैयार कर सकते हैं, उससे बनी शॉलों में रेशों की गोलियों के बनने और रेशों के झड़ने का प्रक्रम बढ़ जाता है। कम लम्बाई की ऊन के सम्मिश्रण से शॉल निर्माण हेतु वस्त्र निर्माण व वस्त्र रसायन विभाग द्वारा 70:30 के अनुपात में संस्थान के उत्तरी शीतोष्ण अनुसंधान केन्द्र, गड़सा की ही उत्पादित कम लम्बाई की संकर नस्ल की ऊन (50–60 मिमी) को अंगोरा रेशों के साथ सम्मिश्रित कर शॉल निर्माण के लिए उपयुक्त 2/44 Nm धागे का निर्माण किया गया, जिसकी भौतिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

क्रम सं	धागे की भौतिक विशेषताएँ	एकल धागा	युगल धागा (दो प्लाई)
1.	काउंट (Nm)	41.7	21.1
2.	ऐंठन (ट्विस्ट प्रति इन्च)	12.8	8.5
3.	मजबूती (ग्राम बल)	151.9	309.7
4.	दीर्धकरण (तानने पर बढ़ाव % में)	6.16	7.04
5.	धागे की असमानता (U %)	23.5	17.9
6.	धागे में प्रति 5000 मीटर लम्बाई पर अवगुणों की संख्या		
	पतला (– 50 %)	2230	390
	मोटा (+ 50 %)	930	240
	गॉठ (+ 200 %)	770	220
7	धागे में प्रति 100 मीटर लम्बाई पर परिधि से बाहर निकले रेशों की संख्या	2901	3708

धागे की गुणवत्ता जाँच में पाया गया कि इस सम्मिश्रण से तैयार 2/44 Nm का धागा अपेक्षाकृत ज्यादा समान रहा, हथकरघे पर उससे सादा व डिजाइन वाले अंगोरा शॉलों का निर्माण किया गया।

तैयार शॉलों का तकनीकी विवरण

विशिष्टता / माप	उपलब्धता
शॉल की लम्बाई	2.10 मीटर
शॉल की चौडाई	1.10 मीटर
शॉल की मोटाई	0.62 मिमी
ताना प्रति इन्च	42
बाना प्रति इन्च	31
बुनाई संरचना	2 / 2 टिविल

चित्र–3 : हथकरघे पर डिजाइन अंगोरा शॉल का निर्माण एंव उनका तकनीकी विवरण

तैयार शॉलें कम–तनाव पर यांत्रिक गुणों की जाँच में अंगोरा रेशों व भारत मेरीनो (60:40) के सम्मिश्रण की शॉलों के समान पाये गये तथा स्पर्श व मुलायमियत में भी विशेष अन्तर नहीं पाया गया। शॉल का आवश्यक उष्मारोधी गुण भी 2.05 Tog के साथ अधिक अंगोरा रेशों के सम्मिश्रण के समकक्ष ही था।

चित्र–4 : प्लेन व डिजाइन अंगोरा शॉल

इन शॉलों के उत्पादन में अंगोरा टोप्स (रु 1650 प्रति किलो) व देशी ऊन टोप्स (रु 450 प्रति किलो) का उपयोग धागा निर्माण में किया गया, अधिक मूल्य के अंगोरा रेशों (दर : रुपये 1550 / – प्रतिकिलो) के कम अनुपात (30%) में उपयोग

होने से उत्पाद लागत अपेक्षाकृत कम आयी । तैयार किये गये जेन्टस, प्लेन लेडिज व डिजाइनर लेडिज शॉल की लागत का विवरण निम्नवत है :–

क्रम स.	माल/कार्य का विवरण	जेन्टस शॉल	प्लेन लेडिज शॉल	डिजाइन लेडिज शॉल
1.	अंगोरा सम्मिश्रित ऊनी धागे के निर्माण की लागत (अंगोरा–30% : देशी ऊन–70%) @ रु 810 प्रति किलो	400 ग्राम × 810 = रु 324	350 ग्राम × 810 = रु 284	350 ग्राम × 810 = रु 284
2.	धागा कताई की लागत @ रु 300 प्रति किलो	400 ग्राम × 300 = रु 120	350 ग्राम × 300 = रु 105	350 ग्राम × 300 = रु 105
3.	धागा रंगाई की लागत @ रु 110 प्रति किलो	–	–	350 ग्राम × 110 = रु 38.5
4.	शॉल बुनाई की लागत @ रु प्रति नग	रु 313	रु 291	रु 315
5.	शॉल की धुलाई, मुलायमियत व कीड़ारोधी गुण हेतु उपचरण की लागत @ रु प्रति नग कुल लागत	रु 56 रु 813	रु 56 रु 736	रु 56 रु 798.5
6.	अतिरिक्त संस्थानिक खर्च @ लागत का 10%	रु 81.3	रु 73.6	रु 79.85
	कुल लागत	**रु 894.3**	**रु 809.6**	**रु 878.35**

संस्थान द्वारा विकसित इस तकनीक के व्यवसायिक प्रयोग में उचित मूल्यों पर विक्रय कर संस्थान की आय निम्नवत रही।

अंगोरा ऊन (30:70) सम्मिश्रित शॉलों का विक्रय

विक्रय वर्ष	शॉल की श्रेणी	विक्रय की गई शॉलों की संख्या	प्रति नग विक्रय मूल्य (रूपये)	विक्रय से आय (रूपये)
2015–16	जेन्टस शॉल	61	850	51850.00
	प्लेन लेडिज शॉल	138	770	106260.00
	डिजाइन लेडिज शॉल	302	850	256700.00
	योग	**501**	–	**414810.00**
2016–17	जेन्टस शॉल	70	850	59500.00
	प्लेन लेडिज शॉल	396	770	304920.00
	डिजाइन लेडिज शॉल	911	850	774350.00
	योग	**1377**	–	**1138770.00**
2017–18	जेन्टस शॉल	25	900	22500.00
	प्लेन लेडिज शॉल	127	810	102870.00
	डिजाइन लेडिज शॉल	936	900	842400.00
	योग	**1088**	–	**967770.00**

विक्रय वर्ष	शॉल की श्रेणी	विक्रय की गई शॉलों की संख्या	प्रति नग विक्रय मूल्य (रूपये)	विक्रय से आय (रूपये)
2018–19	जेन्टस शॉल	89	900	80100.00
	प्लेन लेडिज शॉल	167	810	135270.00
	डिजाइन लेडिज शॉल	165	900	148500.00
	योग	**501**	–	**363870.00**
2019–20	जेन्टस शॉल	50	900	45000.00
	प्लेन लेडिज शॉल	73	810	59130.00
	डिजाइन लेडिज शॉल	114	900	102600.00
	योग	**237**	–	**206730.00**

अतः देशी ऊन व अंगोरा सम्मिश्रण से शॉल बनाने के लिए विकसित तकनीक, तकनीकी हस्तान्तरण के अन्तर्गत व्यवसायिक उत्पाद के लिए लघु व मध्यम उद्योगों के लिए उपलब्ध हैं। इस तकनीक को संस्थान में स्थापित कृषि व्यवसाय उद्भवन (incubation) केन्द्र के माध्यम से स्थानांतरण करने के उद्देश्य से व्यवसायियों को आवश्यक सलाह व सुविधायें प्रदान की जा रही हैं।

संदर्भ :

1. एल्डर, एच० एम०, (1971). वस्त्र परीक्षण एंव गुणवत्ता नियंत्रण, वस्त्र प्रगति, अंक 3, भाग 4
2. गुप्ता, एन० पी०, अरोड़ा, आर० के०, शाक्यवार, डी० बी० पाटनी, पी० सी० तथा पोखरना, ए० के०, (2002). अंगोरा खरगोश के रेशें, तकनीकी बुलिटिन, प्रकाशक– भा0कृ0अ0प0–केन्द्रीय भेड एवं ऊन अनुसंधान संस्थान अविकानगर. पृष्ठ 21–22
3. गुप्ता, डी० सी०, रेशम, के० एस०, देवेन्द्र कुमार तथा सुरेश, ए०, (2005). फार्म व्यवस्था के तहत अंगोरा खरगोश पालन का अर्थिक विश्लेषण एंव वौकल्पिक परिदृश्यों से तुलना, भारतीय लघु रोमान्थी जर्नल, अंक 11(1), पृष्ठ 79–82
4. राजा ए० एस० एम०, अम्यपन एल०, शाक्यवार डी० बी० तथा गुप्ता एन० पी०,, (2011). अंगोरा (खरगोश) रेशों व भारत मेरिनों ऊन सम्मिश्रित शॉलों का उत्पादन व उपयोगी गुणवत्ता, भारतीय लघु रोमान्थी शोध पत्र अंक 17(1) पृष्ठ 79–82
5. वार्षिक प्रतिवेदन वर्ष 2010–11, भा0कृ0अ0प0–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, पृष्ठ संख्या–39
6. वार्षिक प्रतिवेदन वर्ष 2012–13, भा0कृ0अ0प0–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, पृष्ठ संख्या– 21
7. शाक्यवार, डी० बी०, राजा ए० एस० एम० तथा अजय कुमार (2012). हथकरधे के क्षेत्र में अंगोरा रेशें के प्रसंस्करण में नवीन विकास, सेमिनार सार–संग्रह : अंगोरा ऊन उत्पादन तथा हथकरधा क्षेत्र में उपयोग, प्रकाशक– भा0कृ0अ0प0–केन्द्रीय भेड एवं ऊन अनुसंधान संस्थान अविकानगर. पृष्ठ 29–38

ऊनी कपड़े के आकार संकुचन व अन्य गुणों पर एंजाइम उपचारण का प्रभाव

विनोद कदम, सुषमा रानी, राजेंद्र सिंह राजावत, एन एल मीना, सिको जोस,
डी बी शाक्यवार, एन शण्मुगम एवं अजय कुमार

ऊनी वस्त्रों की धुलाई के दौरान सिकुड़न संकुचन एक अंतर्निहित दोष है जो इसकी उपयोगिता को सीमित करता है। कपड़ों में पारंपरिक सिकुड़न प्रतिरोध उपचारण (क्लोरीन–हरकोसेट) पर्यावरण संरक्षण के प्रतिकूल है। पर्यावरण अनुकूल प्रसंस्करण विधि के क्रम में कपड़े के अन्य गुणों को प्रभावित किये बिना स्थायी और प्रभावी सिकुड़न प्रतिरोधी उपचारण आवश्यक है। इस अध्ययन में, मेरिनो ऊन से बुने कपड़े को व्यावसायिक रूप से उपलब्ध एंजाइमों जैसे कि ट्रांसग्लूटामिनेज, लाइपेज, लैकेस और प्रोटिएज एंजाइमों के साथ विभिन्न सांद्रता (कपड़े के वजन पर 0.5 से 2.0 प्रतिशत तक) से इच्छित सिकुड़न प्रतिरोध लगाने के लिए उपचार किया गया। प्रोटिएज एंजाइम उपचारित ऊनी कपड़े में सबसे कम सिकुड़न (3.0 प्रतिशत) प्रोटिएज (4.3 प्रतिशत) लैकेस एंजाइम, लाइपेज एंजाइम (4.9 प्रतिशत) और (7.9 प्रतिशत) ट्रांसग्लूटामिनेज एंजाइम पायी गयी, जोकि बिना उपचारित कपड़े के 13.3 प्रतिशत की तुलना में बहुत कम थी। प्रस्तुत लेख में संरचनात्मक परिवर्तन और आयामी स्थिरता के क्रम में विभिन्न एंजाइमों की विशिष्ट प्रतिक्रिया तंत्र का वर्णन किया गया है। उपचारित कपड़ों की तन्य शक्ति, खिंचाव, पीलापन और सफेदी सूचकांकों को अनुपचारित कपड़े के समान पायी गयी, जबकि घर्षण गुण में काफी सुधार हुआ। ऊनी कपड़े के लिए विकसित यह सिकुड़न प्रतिरोध एंजाइम प्रक्रिया उपचारण प्रक्रिया स्थाई है तथा इसे बृहद स्तर पर उपयोग करना भी आसान है एवं उपचारण द्वारा कपड़ों में तुलनीय यांत्रिक, घर्षण, संभाल और सफेदी आदि गुणों एवं बेहतर संकुचन प्रतिरोधी क्षमता इस प्रक्रिया की व्यवसायिक उपयोगिता प्रतिस्थापित करता है। इस कारण समुचित रूप से औद्योगिक अनुकूलन की क्षमता रखता है ।

1. परिचय

ऊनी कपड़े अपने उष्मा, अग्निरोधी एवं मुलायमियत युक्त गुणों के कारण आरामदायक होते हैं। ऊनी कपड़े को अद्वितीय गुणों जैसे कि उत्कृष्ट उष्मीय व आग प्रतिरोधकता और त्वचा के लिए आरामदायक माना जाता है। हालांकि, धुलाई के दौरान संकुचन सिकुड़न ऊनी कपड़ों का एक प्रमुख दोष है। ऊनी कपड़े को बार–बार धोने के बाद रेशों के उलझने के कारण यह संकुचन पैदा होता है। रेशे की बाहरी परत पर उपस्थित स्केल संरचना का दिशात्मक घर्षण प्रभाव इस संकुचन की वजह होता है। ऊन रेशे की सूक्ष्म संरचना में छल्ली, प्रत्यास्थता और मज्जा शामिल हैं। छल्ली एक हाइड्रोफोबिक बाहरी सतह है, जिसमें एक दूसरे से सटी हुई कांटेदार परतें होती हैं। धुलाई के दौरान, स्केल्स एक दूसरे के साथ जुड़ जाते हैं और परिणामस्वरूप कपड़े में अपरिवर्तनीय संकुचन सिकुड़न पैदा होती है।

ऊनी कपड़े को मशीन में धोने योग्य और संकुचन सिकुड़न प्रतिरोधी बनाने हेतु कई प्रक्रियायें की जाती हैं। इन प्रक्रियाओं में ऑक्सीकरण, क्लोरीनेशन, एंजाइम, विकिरण, पॉलीमर कोटिंग और प्लाज्मा अपचरण आदि शामिल हैं। इनमें क्लोरीनेशन और पॉलीमर कोटिंग (क्लोरीन–हरकोसेट) अभिक्रिया सिकुड़न रोकने हेतु अधिक प्रभावी, सस्ती और कम ऊर्जा खपत वाली प्रक्रिया है। हालांकि, यह प्रक्रिया ऊन के कपड़े के गुणों को प्रभावित करती है और पर्यावरण में अवशोषण योग्य कार्बनिक पदार्थ (ए ओ एक्स) छोड़ती है। वैकल्पिक टिकाऊ उपचार जैसे यूवी–विकिरण, ओजोन ऑक्सीकरण और एंजाइम

उपचार करने की भी कोशिश की गई है। यूवी–विकिरण और ओजोन उपचार से ऊनी रेशों को गंभीर नुकसान हो सकता है और रेशे में पीलापन भी आ जाता है। एंजाइम उपचार धीमे होने के बावजूद ऊन कपड़े के मूल गुणों को बनाए रखने के लिए उपयोगी साबित हो सकता है।

एंजाइम के विशिष्ट व पर्यावरण अनुकूल होने के कारण वस्त्र रेशों सहित अन्य विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

एंजाइम ऊन के डाइसल्फाइड बन्ध को तोड़ने हेतु एक प्राकृतिक अणु है जो ऊनी वस्त्रों का प्रदूषण रहित अभिक्रिया करने में सार्थक है। ऊन विशिष्ट एंजाइम डाइसल्फाइड बन्ध पर प्राथमिकता से हमला करते हैं जो नमीशोषण प्रदान करते हैं और ऊनी कपड़ों के सिकुड़न को कम करते हैं। प्रोटिएज एंजाइम उपचारित ऊन कपड़े में बिना किसी नुकसान के अच्छा सिकुड़न प्रतिरोध पैदा करते हैं। प्रस्तुत लेख में ट्रांसग्लूटामिनेज, लैकेस और प्रोटिएज जैसे एंजाइमों का ऊनी कपड़े का सिकुड़न प्रतिरोध के लिए अध्ययन किया गया है। हालांकि, प्रतिक्रिया तंत्र एंजाइम से एंजाइम में भिन्न होता है। समान प्रसंस्करण स्थितियों में ऊन कपड़ो में एंजाइम–विशिष्ट क्रिया पर बहुत सीमित जानकारी उपलब्ध है।

इस अध्ययन में, समान प्रसंस्करण स्थितियों का उपयोग करते हुए ऊनी कपड़े का तीन अलग–अलग सांद्रता स्तरों (0.5, 1 और 2 प्रतिशत कपड़े के वजन पर) में ट्रांसग्लूटामिनेज, लाइपेस, लैकेस और प्रोटिएज एंजाइम के साथ उपचार किया गया था। एंजाइम पीएच विशिष्ट हैं। ट्रांसग्लूटामिनेज, लाइपेज, लैकेस और प्रोटिएज एंजाइम के लिए पीएच स्तर क्रमशः 7. 0, 8.5, 4.5 और 8.5 था। प्रत्येक स्तर पर सिकुड़न प्रतिरोध को मापा गया और बिना उपचारित कपड़े के साथ तुलना की गई। एंजाइमों की एकाग्रता जिस पर कम से कम संकुचन प्राप्त हुआ (ट्रांसग्लूटामिनेज और लैकेस के लिए 2 प्रतिशत जबकि लाइपेज और प्रोटिएज एंजाइम के लिए 1 प्रतिशत) आगे के प्रयोग के लिए चयन किया गया। स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी का उपयोग कर एंजाइम उपचारित कपड़े की सतह आकृति का अध्ययन किया गया। ऊनी कपड़े के तन्य और घर्षण के गुणों पर एंजाइमों के प्रभाव को परखा गया। एंजाइम उपचार के कारण कपड़े के पीलेपन और सफेदी सूचकांक पर पड़े प्रभाव का भी अध्ययन किया गया और इसकी तुलना अनुपचारित कपड़े से की गई।

2. सामग्री और विधियाँ

मेरिनो ऊन का कपड़ा लुधियाना के स्थानीय बाजार से खरीदा गया था। बुना हुआ कपड़ा 19 माइक्रोन ऊन से बना था। कपड़े के विशेष विवरण वजन – 146 ग्राम/वर्ग मीटर, ताना X बाना – 52 X 54, ताना व बाना धागा सख्या – 21 टेक्स, और फैब्रिक कवर – 19.56 पाया गया। ट्रांसग्लूटामिनेज (100 आईयू /जी) एंजाइम को ओम एंजाइम, गुजरात, भारत से लिया गया था। लाइपेज (40000 यूनिट/ग्राम), और प्रोटिएज (60000 यूनिट / ग्राम) एंजाइम की खरीद ओम बायोसाइंसेस, अहमदाबाद, भारत से की गई थी। लैकेस (2000 ई बी यु/ग्राम) एंजाइम, बायोसाइंस प्राइवेट लिमिटेड, किम, गुजरात से खरीदा गया। सोडियम कार्बोनेट (मर्क), ग्लेसिएल एसिटिक एसिड (मर्क), सोडियम हाइड्रॉक्साइड (मर्क) और अल्ट्रावोन जेयू (गीला करने वाला एजेंट) का उपयोग बिना किसी मिलावट के किया गया था। ऊन विशिष्ट डिटर्जेंट का उपयोग विमीयस्थिरता परीक्षण के लिए किया गया।

मोम और अन्य अशुद्धियों को दूर करने के लिए 30 मिनट तक 55 डिग्री सेल्सियस पर 1.0 प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट और 2.0 प्रतिशत अल्ट्रावोन जेयू (कपड़े के वजन पर) का उपयोग कर ऊन के कपड़े का परिमार्जन किया गया। शुद्ध कपड़े का उपयोग नियंत्रण और संदर्भ के रूप में किया गया । शुद्ध कपड़े के भौतिक गुणों जैसे, क्षेत्र घनत्व, मोटाई और धागे के घनत्व को ज्ञात किया गया।

ऊनी कपड़े के नमूने को क्रमशः 0.5 प्रतिशत, 1.0 प्रतिशत और 2.0 प्रतिशत (कपड़े के वजन पर) के साथ ट्रांसग्लूटामिनेज, लाइपेज, लैकेस और प्रोटिएज एंजाइमों के साथ उपचारित किया गया। तालिका 1 विभिन्न एंजाइमों की अलग–अलग सांद्रता और विशिष्ट एंजाइम के लिए पीएच मान के लिए उपयोग किए जाने वाले समरूपता को दर्शाता है। उपचार 60 मिनट के लिए 55 डिग्री सेल्सियस पर एक इन्फ्रारेड बीकर डाइंग मशीन (टेक्सकेयर) में किया गया। उपचार के बाद, 80 डिग्री सेल्सियस पर गर्म पानी में उपचारित नमूनों को 10 मिनट के लिए डुबो कर एंजाइमों को निष्क्रिय कर दिया गया। अंत में, नमूनों को ठंडे पानी से धोया गया और ओवन में सुखाया गया। बिना किसी एंजाइम के एक रिक्त उपचार का आयोजन किया गया जहां शुद्व कपड़े को समान स्थितियों के साथ उपचारित किया गया ।

तालिका 1– एंजाइम उपचार का विवरण

एंजाइम	समरूपता	एकाग्रता (प्रतिशत)	पी एच
एंजाइम के बिना	रिक्त	––	7
ट्रांसग्लूटामिनेज	टीजी 1	0.5	7.0
	टीजी 2	1.0	
	टीजी 3	2.0	
लाइपेज	एलपी 1	0.5	8.5
	एलपी 2	1.0	
	एलपी 3	2.0	
लैकेस	एलसी 1	0.5	4.5
	एलसी 2	1.0	
	एलसी 3	2.0	
प्रोटिएज	पीआर 1	0.5	8.5
	पीआर	21.0	
	पीआर	32.0	

धुलाई मशीन का उपयोग कर अनुपचारित और एंजाइम उपचारित कपड़े के नमूनों की विमीय स्थिरता का अध्ययन किया गया। 15 × 15 सेमी के कपड़े के नमूने को पानी प्रतिरोधी पेन द्वारा अंदर से 12 × 12 सेमी चिह्नित किया गया। वास्कोटर 21 का उपयोग करते हुए मानक विधि आईएसओ 6330 का अनुकरण करते हुए चिह्नित नमूनों को धुलाई मशीन में एक स्थिर चक्र और तीन फेल्टिंग चक्र से गुजारा गया। स्थिर चक्र में, कपड़े 1 ग्राम/लीटर डिटर्जेंट में कमरे के तापमान पर 60 मिनट तक बिना किसी हलचल के डुबोये रखा। प्रत्येक फेल्टिंग चक्र के दौरान, नमूने को 40 डिग्री सेल्सियस पर 60 मिनट के लिए 0.3 ग्राम/लीटर डिटर्जेंट के साथ ए लॉन्ड्रोमीटर में धोया गया और ओवन में सुखाया गया। तीन फेल्टिंग चक्रों के बाद, निम्न समीकरण के अनुसार क्षेत्र संकोचन की गणना की गई।

$$\text{खेत्र संकोचन (\%)} \frac{\text{उपचार से पहले कपड़े का क्षेत्र (सेमी}^2\text{)–उपचारित कपड़े का क्षेत्र (सेमी}^2\text{)}}{\text{उपचारित से पहले कपड़े का क्षेत्र (सेमी}^2\text{)}} \times 100$$

3. परिणाम और चर्चा

ट्रांसग्लूटामिनेज ऊन केराटिन में पेप्टाइड बॉन्ड ग्लूटामाइन के एक कार्बोक्सामाइड समूहों के गठन से क्रॉस–लिंकिंग का कारण बनता है। लाइपेज और प्रोटिएज हाइड्रॉलिसिस वर्ग के हैं और बॉन्ड के हाइड्रोलाइटिक दरार का कारण बनते हैं। अपशिष्ट, रंग और लिग्निन में गिरावट के लिए लैकेस का उपयोग किया गया है। यह मोनोमर्स के क्रॉस–लिंकिंग में भाग ले सकता है।

सभी एंजाइम पीएच, तापमान और समय के प्रति संवेदनशील होते हैं। प्रत्येक एंजाइम के लिए उपचार समय अंतराल को 60 मिनट तक स्थिर रखा गया। प्रत्येक एंजाइम के तीन सांद्रता यानी 0.5 प्रतिशत, 1.0 प्रतिशत और 2.0 प्रतिशत चुने गए। एंजाइम आसानी से ऊन रेशो में प्रवेश कर नुकसान पहुंचा सकते हैं। यह संभावना उच्च एंजाइम एकाग्रता के साथ अधिक है। इसलिए एंजाइम की सान्द्रता अधिकतम 2 प्रतिशत तक सीमित रखी गयी। एंजाइम उपचारित नमूनों को सिकुड़न प्रतिरोध या दूसरे शब्दों में विमीय स्थिरता निर्धारित करने के लिए एक विश्राम चक्र और तीन फेल्टिंग चक्र दिए गए ।

आकृति 1 में विभिन्न एंजाइम उपचारित कपड़ों की विमीय स्थिरता प्रस्तुत की गयी है। स्थिर चक्र ने कपड़ों के बीच तुलनीय और कम से कम आयामी परिवर्तन देखा गया । प्रोटीज उपचारित कपड़ों के मामले में, नकारात्मक सिकुड़न पायी गयी। इस घटना को जलोदर विस्तार के रूप में भी जाना जाता है और यह संशोधित छल्ली के माध्यम से पानी के अणुओं द्वारा एंजाइम उपचारित ऊन तंतुओं की संभावित फलने के कारण हो सकता है। यह नकारात्मक सिकुड़न इंगित करती है कि प्रोटीज ने सतह शल्क का अनुभेदन अन्य एंजाइमों की तुलना में अधिक प्रभावी ढंग से किया है जो नमीयुक्त ऊनी रेशों की सतह को अपेक्षाकृत नमीकारक बनाता है।

तीन फेल्टिंग चक्र के बाद बिना एन्जाइम किये गये कपड़े में क्षेत्रीय सिकुड़न (12.3 प्रतिशत) अधिक था। कुल मिलाकर, एंजाइम उपचार के कारण ऊन के कपड़े का सिकुड़न क्षेत्रफल कम हो गया। यह सभी प्रोटीन–विशिष्ट एंजाइम, उपर्युक्त परिस्थितियों में, ऊन की सतह शल्क को हटा सकते हैं जिससे धुलाई के दौरान फेल्टिंग की संभावना कम हो जाती है। रेशों की सतह पर एंजाइम के प्रभाव से आंशिक रूप से डाइसल्फाइड बॉन्ड टूटने के कारण सतह चिकनी हो सकती है।

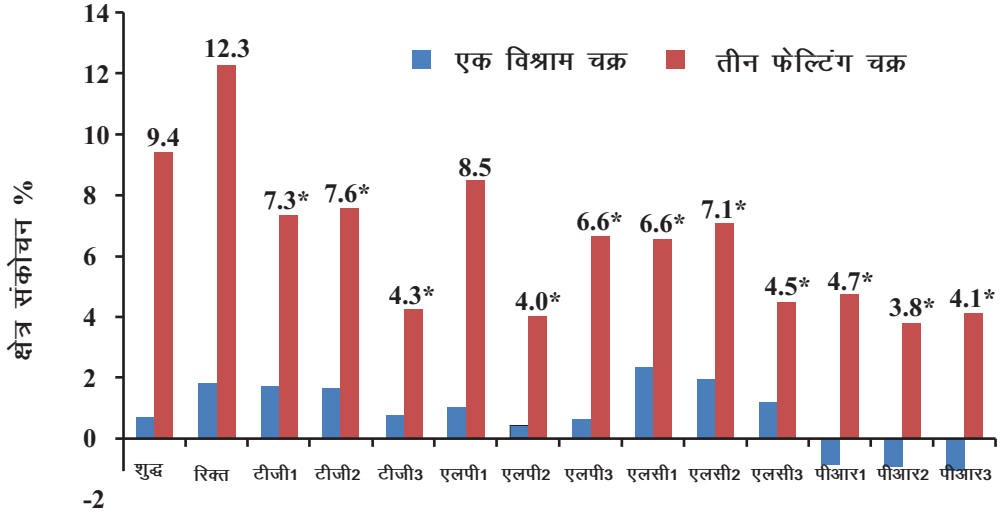

आकृति 1 ट्रांसग्लूटामिनेज, लाइपेज, लैकेस और प्रोटीज एंजाइमों के साथ 0.5–2 प्रतिशत की एकाग्रता सीमा में उपचारित ऊनी कपड़ों का क्षेत्रीय संकोचन

अनुपचारित कपड़े की तुलना में उपचारित ऊनी कपड़े में सिकुड़न प्रतिरोध सभी एंजाइमों में काफी प्रभावी पाया गया। कुल एन्जाइम उपचारित शोध प्रयोगों में ट्रांसग्लुटामिनेज और लैकेस 2 प्रतिशत (टीजी 3 और एलसी 3,) लिपेज और प्रोटीज 1 प्रतिशत (एलपी 2 और पीआर 2) बेहतर पाए गए। इनमें क्षेत्रीय संकुचन 5 प्रतिशत से कम पाया गया।

एंजाइम अभिक्रिया से ऊन रेशों के अन्य गुणों पर हुये प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उपचारित कपड़े का विस्तृत अध्ययन किया गया। तन्य शक्ति, खिंचाव, घर्षण निर्देशांक, पीलापन एवं सफेदी सूचकांक तालिका 2 में प्रदर्शित किये गये हैं। एंजाइम उपचार से ऊन की तन्य शक्ति में कोई महत्पूर्ण बदलाव नहीं पाया गया, जबकि एंजाइम क्रिया से घर्षण गुण में बढ़ोतरी हुई जिससे क्षेत्र संकोचन प्रतिरोध बढ़ाने में सहयोग मिला। सफेदी एवं पीलापन सूचकांक में कोई बदलाव नहीं देखा गया। इससे प्रतीत होता है कि एंजाइम अभिक्रिया ऊनी कपड़े को पीला होने से रोकती है, जबकि पारंपरिक उपचार में ऊनी कपड़ों में पीलापन आ जाता है।

तालिका 2 –गुण धर्म विश्लेषण

कपडों	तन्यशक्ति (मेगापास्कल)	खिंचाव (प्रतिशत)	घर्षण नियतांक	पीलापन सूचनांक	सफेदी सूचनांक
शुद्ध	11.8	23.4	0.7	18.8	50.8
अनुपचारित	11.1	19.0	0.8	17.6	52.9
टीजी	11.6	17.7	0.8*	19.7	49.2
एलपी	11.1	17.1*	0.8*	19.5	48.7
एलसी	11.7	18.2	0.8*	19.8	49.4
पीआर	10.7	15.7*	0.8*	18.6	50.9

उक्त परिणामों की पुष्टि करने के उद्देश्य से ऊनी कपड़ों को पुनः चयनित एंजाइम सांद्रता के साथ उपचारित किया गया एवं बिना उपचारित कपड़े के साथ तुलना की गई (आकृति 2)। प्रोटीएज और लैकेस के मामले में स्थिर चक्र के

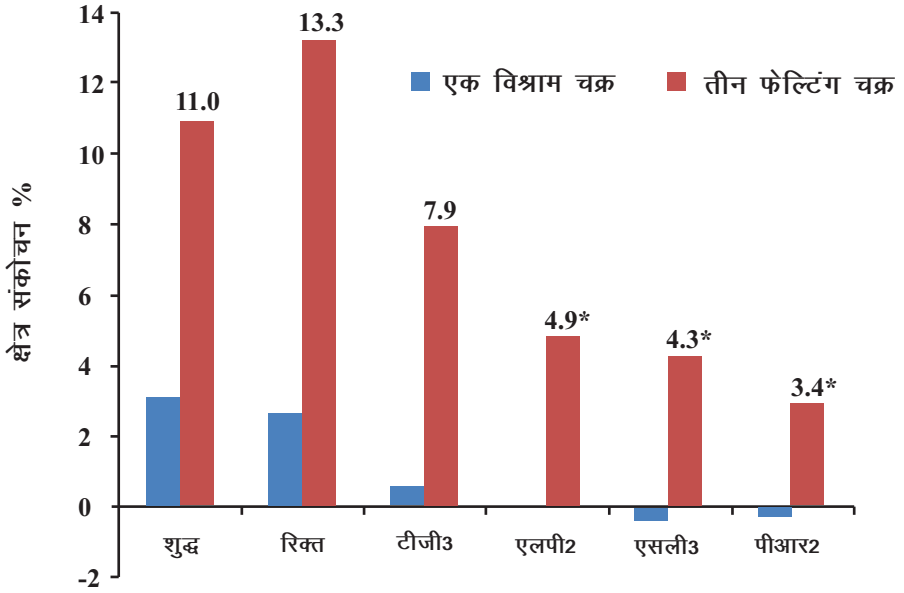

आकृति 2 ऊन कपड़ों की आयामी स्थिरता पर चयनित एंजाइम एकाग्रता का प्रभाव

दौरान पानी के अणुओं के आसान प्रवेश के कारण नकारात्मक संकुचन होता है, जो हाइग्रल विस्तार का कारण बनता है। अनुपचारित कपड़े में क्षेत्रीय संकोचन संकोचन अधिकतम (13.3 प्रतिशत) पाया। यह संकोचन 60 मिनट तक 55 डिग्री सेल्सियस पर गर्म पानी में कपड़े को बार – बार घर्षण के कारण होता है। यांत्रिक क्रिया और उच्च तापमान के कारण ऊन का कपड़ा सिकुड़ जाता है। हालांकि, जब कपड़े को समान परिस्थितियों में एंजाइमों के साथ उपचारित किया गया तो कपड़े का संकुचन काफी कम हो गया। विभिन्न एंजाइमों के बीच, पी आर 2 (3.0 प्रतिशत) उपचारित कपड़े में न्यूनतम क्षेत्रीय संकोचन देखा गया। यह ऊन रेशों की सतह पर एंजाइमों द्वारा ऊपरी छल्ली के आंशिक हाइड्रोलिसिस के कारण होता है। प्रोटीएज (2 प्रतिशत) के विमीय स्थिरता परिणामों को घर्षण के सबसे कम गुणांक के साथ जोड़ा जा सकता है। प्रोटीज ऊन के ऊपरी छल्ली को हाइड्रोलाइज कर अंतर–फाइबर घर्षण को कम कर देती है। प्रोटीएज (2 प्रतिशत) का संकुचन (3.0 प्रतिशत) मल्टी–स्टेप उपचारित कपड़े (3.1 प्रतिशत) के समान पाया गया है। कुल मिलाकर, प्रोटीज एंजाइम प्रसंस्करण से अन्य एंजाइमों की तुलना में ऊनी कपड़ों को बेहतर विमीय स्थिरता प्रदान करता है।

अन्य एंजाइमों में, लाइपेज व प्रोटीएज के परिणाम समान पाये गये। पीएच स्तर (8.5) और एंजाइमों की समान प्रकृति के कारण हो सकता है। प्रोटीएज और लाइपेज एंजाइम हाइड्रॉलिसिस समूह से संबंधित हैं और समान प्रतिक्रिया तंत्र का पालन करते हैं जो बॉन्ड संबंधों की हाइड्रोलाइटिक दरार है। हालांकि, लाइपेस एस्टर बॉन्ड को हाइड्रोलाइज करता है, जबकि प्रोटीएज पेप्टाइड बॉन्ड को हाइड्रोलाइज करता है, इसलिए बराबर पीएच स्तर में एक प्रभावी भूमिका हो सकती है। जबकि, ट्रांसग्लुटामिनेज और लैकेस के मामले में, दोनों प्रोटीन अणुओं के क्रॉस–लिंकिंग में सहायता करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप शुद्व और अनुपचारित कपड़े की तुलना में ऊनी कपड़े को बेहतर विमीय स्थिरता प्रदान करता है।

1 प्रतिशत सान्द्रता में प्रोटीएज और 2 प्रतिशत सान्द्रता में लैकेस द्वारा लाइपेज और ट्रांसग्लूटामिनेज से बेहतर सिकुड़न प्रतिरोध दिखाया। सभी चार एंजाइमों की अलग–अलग प्रकृति के कारण, सिकुड़न प्रतिरोध प्रदर्शन की सीधे तुलना करना मुश्किल है। हालांकि, इसे एंजाइम के पीएच स्तर के साथ जोड़ा जा सकता है। प्रोटीएज और लाइपेज एंजाइम उपचार में क्षारीय पीएच (8.5) था, जबकि लैकेस और ट्रांसग्लूटामिनेज में क्रमशः अम्लीय (4.5) और तटस्थ/निष्पक्ष/उदासीन (7.0) पीएच था। यह अध्ययन बताता है कि कम सांद्रता में क्षारीय पीएच विशिष्ट एंजाइम तटस्थ और अम्लीय पीएच विशिष्ट एंजाइमों की तुलना में ऊनी कपड़ों के लिए बेहतर सिकुड़न प्रतिरोध प्रदान कर सकते हैं।

4. निष्कर्ष

ऊनी कपड़े को ट्रांसग्लूटामिनेज, लाइपेज, लैकेस और प्रोटीएज एंजाइम के साथ 0.5, 1.0 और 2.0 प्रतिशत सांद्रता में अभिक्रियित किया गया था। परिमार्जित कपड़े की तुलना में मानक प्रोटोकॉल का उपयोग कर 12 कपड़ों की फेल्ट सिकुड़न को निर्धारित किया गया। सबसे अच्छे क्षेत्र संकोचन वाले प्रत्येक एंजाइम की सान्द्रता सत्यापन के लिए यांत्रिक, घर्षण और मुड़ने वाले गुणों का अध्ययन करने के लिए दोहराया गया। ट्रांसग्लूटामिनेज (2 प्रतिशत), लाइपेज (1 प्रतिशत), लैकेस (2 प्रतिशत) और प्रोटीएज (1 प्रतिशत) एंजाइम में कम संकुचन पाया गया, यानी क्रमशः 13 प्रतिशत अनुपचारित कपड़े की तुलना में 7.9 प्रतिशत, 4.9 प्रतिशत, 4.3 प्रतिशत और 3.0 प्रतिशत था। 13.3 प्रतिशत प्रोटीएज एंजाइम की कम सांद्रता आंशिक रूप से बाहरी सतह (क्यूटिकल स्केल्स) पर ऊन के पेप्टाइड बॉन्ड को हाइड्रोलाइज करती है। प्रोटीएज एंजाइम की कम एकाग्रता आंशिक रूप से बाहरी सतह क्युटीकल स्केल्स पर ऊन के पेप्टाइड बांडों को हाइड्रोलाइज करती है और अंतर–फाइबर घर्षण को कम करती है जो स्केल्स के अंतराल को टालता है। यह एंजाइम क्रिया ऊन के कपड़े को आयामी

स्थिरता प्रदान करती है। क्षारीय पीएच, प्रोटीएज और लाइपेज एंजाइम उपचार के दौरान आगे आयामी स्थिरता प्राप्त करने के लिए अनुकूल है। ट्रांसग्लूटामिनेज और लैकेस के एंजाइम प्रोटीन अणुओं के क्रॉस–लिंकिंग में सहायता करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप ऊन कपड़े की बेहतर आयामी स्थिरता हो सकती है। एंजाइम उपचारित कपड़ों के तन्य गुण को रिक्त कपड़े के साथ तुलनीय पाया गया। घर्षण गुणों को एंजाइम उपचार के पक्ष में काफी बदल दिया गया था। एंजाइम उपचार न तो सफेदी सूचकांक को प्रभावित करता है और न ही कपड़े के पीले होने का कारण बनता है। एंजाइमों में, यांत्रिक और महत्वपूर्ण गुणों को संभालने के बिना अधिकतम सिकुड़न प्रतिरोध को प्राप्त करने के लिए 1.0 प्रतिशत एकाग्रता पर प्रोटीएज सबसे अच्छा पाया गया। ऊन के गुणों के प्रतिधारण के अलावा, एंजाइम उपचार टिकाऊ और आसान होता है। इसलिए, यह औद्योगिक अनुकूलन के लिए आशाजनक क्षमता रखता है।

महत्वपूर्ण सन्दर्भ

1. हसन एम एम और कार्र सी एम, उन्नत अनुसंधान के जर्नल, 18 (2019) 39.
2. गन्स जी बी, अकोययुन ओ, डेमिर टी, बोजाकी ई, डेमिर ए और हैम्स ई ई, कपड़ा विज्ञानकी अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका, 7 (2) (2018) 43.
3. मधु ए और चक्रवर्ती जे एन, सफाई के उत्पादन की पत्रिका, 145 (2017) 114.
4. नटराजन एस और गुप्ता डी, टेक्सटाइल संस्थान की पत्रिका, (2018) 1.
5. झाओजेड , डी वाई और वैंग डब्ल्यू, प्राकृतिक फाइबर की पत्रिका, (2019) 1.

समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो
तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर

कृषि व्यवसाय उद्भवन केन्द्र - स्व-रोजगार परक योजना

विनोद कदम, योगेश गाडेकर, डी.बी. शाक्यवार, आर्तबन्धु साहू, अरूण कुमार,
एफ.ए. खान, देवेन्द्र कुमार, ए.एस. राजेन्द्रन, श्याम सिंह एवं राघवेन्द्र सिंह

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा संचालित राष्ट्रीय कृषि नवाचार निधि योजना के तहत केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान – कृषि व्यवसाय उद्भवन केन्द्र (एबीआईसी) की स्थापना अक्टूबर 2019 में की गयी है। एबीआईसी का इरादा नवाचार, प्रौद्योगिकी और कौशल विकास का उन्नयन करते हुए नवाचार के माध्यम से विकास की अवधारणा के साथ कृषि व्यवसाय और उद्यमिता विकास को बढ़ावा देना है। यह केंद्र आवश्यकता के अनुसार भौतिक, तकनीकी, व्यवसायिक और नेटवर्किंग सुविधाएं और सेवाएं प्रदान कर उद्यमों की सफल स्थापना इस उद्देश्य के प्राप्त हेतु सम्बन्धित उद्यम का परीक्षण और सत्यापन करते हुए नए स्टार्ट–अप/उद्यमियों के उद्ययन की सुविधा की परिकल्पना करता है। वर्तमान में केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान– कृषि व्यवसाय उद्भवन केन्द्र, व्यावसायिक भेड़, बकरी और खरगोश पालन और कटाई उपरान्त तकनीकी के क्षेत्र में उद्यमिता को बढ़ावा दे रहा है। इन क्षेत्रों में विकास में तेजी लाने के लिए हमारे एबीआईसी के माध्यम से सभी संभावित एग्रीप्रेन्योरों को पोषण देने के लिए समर्थन प्रदान किया जाता है। इस परियोजना का प्रमुख नजरिया अंतिम उपयोगकर्ताओं के लिए नवीन प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण के लिए कृषि व्यवसाय उद्भवन केन्द्र के माध्यम से उद्यमशीलता को बढ़ावा देना है। इस केन्द्र के माध्यम से संस्थान छोटे जुगाली करने वाले पशुओं के उत्पादन, उपयोग और संबद्ध क्षेत्रों में उभरती प्रौद्योगिकी की वृद्धि और सफलता के लिए पशुपालन क्षेत्र में उन्नत तकनीकियों से प्रेरित होकर उद्यमशीलता की संस्कृति को विकसित कर रहा है।

योजना के उद्देश्य

यह केन्द्र निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संस्थान के अनुभवी वैज्ञानिकों की टीम द्वारा संचालित किया जा रहा है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं।

- संस्थान –उद्यमी/उद्योग संपर्क विकसित करना।
- उद्यमियों/उद्योगों/छात्रों को अपने उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए प्रक्रिया/उत्पाद विकास में अनुसंधान और विकास के लिए मंच प्रदान करना।
- छोटे जुगाली करने वाले पशुओं के उत्पादन, उपयोग और सम्बन्धित क्षेत्रों के उद्यमियों को व्यवसायीकरण में सहायता के साथ–साथ बुनियादी ढाँचा और तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान करना।
- व्यवसाय स्थापित करने में स्टार्ट–अप/शुरुआती कंपनियों को शामिल करने के लिए, परामर्श, प्रशिक्षण, व्यावसायिक सलाहकार सेवाओं के माध्यम से स्थिरता और सफलता के स्तर तक पहुंचना।
- भेड़, बकरी और खरगोश उत्पादन और मूल्य वर्धित ऊन, मांस और दूध उत्पादों में उच्चीकरण और व्यवसाय विकास।
- संभावित ग्राहक के निर्माण के लिए ऊन, मांस और दूध के मूल्य श्रृंखला में तकनीकी–उद्यमी गतिविधियाँ प्रदान करना।

❖ भेड़ और ऊन क्षेत्र से संबंधित चयनित हितधारकों में कौशल विकास।

उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु संस्थान द्वारा विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ आयोजित की जा रही हैं। जिनमें उद्यमी से सम्पर्क, नवीन तकनीकी का राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शनक प्रमुख है। केन्द्र द्वारा निम्न प्रकार की सुविधायें प्रदान की जा रही हैं।

आधारिक संरचना कार्य स्थान, संचार और कंप्यूटिंग की व्यवस्था, प्रदर्शनी सह जानकारी, प्रशिक्षण और अन्य सुविधाएं आदि प्रदान की जाती हैं।

परामर्श सेवा उद्यमियों को व्यावसायिक सहायता, मार्गदर्शन और सर्वोत्तम परामर्श प्रदान किया जाता है।

तकनीकी सलाह सर्वश्रेष्ठ तकनीकी परिचय के साथ विशेषज्ञों द्वारा उद्यमियों का मार्गदर्शन, संस्थान द्वारा समय–समय पर तकनीकी सलाह उपलब्ध करायी जाती है।

क्षमता निर्माण इनक्यूबेट्स और संस्थान से जुड़े सदस्यों एवं अन्य लोगों की तकनीकी दक्षता विकसित करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम और कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं।

तकनीकी परामर्श किसानों/उद्यमियों और स्थापित इकाइयों के लिए परामर्श सेवा उपलब्ध करायी जा रही है।

इन्कयूबेशन और पायलट स्केल उत्पादन उद्यमियों को उनके नवीन विचारों को व्यावसायिक रूप से व्यवहार्य उत्पादों में बदलने के लिए इन्कयूबेशन सुविधाएं और सेवाएं प्रदान की जा रही हैं।

तकनीकी हस्तांतरण गैर विशिष्ट अनुज्ञा पत्र समझौते के माध्यम से प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की व्यवस्था की गयी है।

नेटवर्किंग फर्म की व्यवहार्यता और बाजार में प्रवेश पाने के लिए नेटवर्किंग सुनिश्चित किया गया है।

हाथ पकड़ना प्रारम्भिक अवस्था के दौरान उद्यमियों को सावधानीपूर्वक सहयोग और मार्गदर्शन प्रदान कर उद्यमी को सहयोग प्रदान किया जा रहा है।

खेत/कार्यशाला का मुआयना खेत/कार्यशाला में इन्क्यूबेटर के अनुरोध पर वैज्ञानिकों/विशेषज्ञों का दौरा कर आवश्यक सलाह उपलब्ध करायी जा रही है। हांलाकि वैज्ञानिकों के आने–जाने का खर्च इन्कूवेटर द्वारा वहन किया जाता है।

नियामक और सलाहकार सेवाएं ब्रांडिंग, प्रमाणन और विपणन के लिए सलाह सेवाओं का भविष्य में विस्तार की योजना है।

बौद्धिक संपदा अधिकार कक्ष आईपी प्रबंधन और नए उत्पादों के व्यावसायीकरण में बौद्धिक मदद संस्थान में स्थित बौद्धिक सम्पदा परीक्षण इकाई द्वारा की जाती है।

अनुदान निवेशकों, बैंक ऋण और अन्य विभिन्न वित्तपोषण एजेंसियों के माध्यम से सुविधा के लिए अनुदान भविष्य में उपलब्ध कराये जाने की योजना है।

सिंगलविंडो एक्सेस

केंद्र द्वारा परामर्शी, संघ और ऊष्मायन के लिए संस्था के भीतर सभी कृषि–व्यवसाय गतिविधियों के लिए एकल–खिड़की का उपयोग प्रदान किया जायेगा, जो प्रारंभिक अवस्था में परियोजनाओं का नेतृत्व करने के लिए समूहों को प्रोत्साहित करेगा।

शुरुआती, उद्यमियों और अन्वेषकों के लिए मुख्य तकनीकी क्षेत्र

शुरुआती, उद्यमियों और अन्वेषकों के लिए भा.कृ. अनु. प. – केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान में उपलब्ध प्रौद्योगिकियाँ निम्नवत हैं

व्यावसायिक भेड़, बकरी और खरगोश पालन

- मटन उत्पादन के लिए व्यावसायिक मेमने का पालन
- ऊन अपशिष्ट से जैविक अविखाद
- मूल्यवर्धित भेड़ का दूध उत्पादन
- मूल्यवर्धित भेड़ मांस उत्पाद
- शुद्ध पश्मीना शॉल का विकास
- ऊन और विशिष्ट बाल रेशों के लिए मूल्यवर्धन
- मोटी ऊन से ऊनी उत्पाद का विकास
- व्यवसायिक अंगोरा ऊन और बॉयलर खरगोश उत्पादन
- भेड़ / बकरी / खरगोश और सेन्क्रस घास पर बीज प्रौद्योगिकी

भविष्य की योजना

1. उद्यमी छात्रों / पीएचडी / अकादमिक शोधकर्ताओं के लिए कार्यक्रम और प्रशिक्षण आयोजित किये जाने की योजना है।
2. स्टार्टअप, विशेष रूप से ज्ञान और पूंजी प्रधान स्टार्टअप के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा नवीन जानकारी उपलब्ध कराने की योजना है।
3. स्टार्टअप्स और नवाचार पारिस्थितिकी तंत्र के लाभ के लिए कॉर्पोरेट साझेदारी विकसित करने के लिए इनक्यूबेटर और कॉलेज के छात्रों के लिए प्रशिक्षण दिया जायेगा।
4. स्टार्टअप्स के लिए वित्तीय सहायता देने के लिए एग्री–बिजनेस सहायता संघ बनाने के लिए कॉर्पसफंड / मानव धन का निर्माण किया जाना शामिल है।
5. खाद्य और कृषि तकनीक क्षेत्रों में उन्नत स्टार्टअप, निवेशक और कॉर्पोरेट के लिए प्रतिस्पर्धा स्थापित करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किया जाना प्रस्तावित है।

पंजीकरण शुल्क

उद्यमी / स्टार्ट–अप / गैर–सरकारी संगठन / छात्र / किसान / कंपनी आदि कृषि व्यवसाय उद्भवन केन्द्र (एबीआईसी) में पंजीकृत किये जाते हैं। केवल वही उद्यमी / गैर–सरकारी संगठन / छात्र / किसान / कंपनियां एबीआईसी द्वारा संचालित प्रौद्योगिकियों से सम्बन्धित ज्ञान ले सकते हैं जो केन्द्र से संबद्ध होगें। विभिन्न श्रेणियों के लिए प्रस्तावित पंजीकरण शुल्क निम्नानुसार तय की गयी है:

श्रेणी–ए : एक व्यक्तिगत किसान / छात्र : रु 1000.00 प्रति वर्ष

श्रेणी–बी : संभावित एग्रीप्रेन्योर : रु 2000.00 प्रति वर्ष

श्रेणी–सी : एनजीओ/किसान समूह/सहकारी सिमितियाँ : रु 3000.00 प्रति वर्ष

(किसान उत्पादक संगठन, एसोसिएशन, स्वयं सहायता समूह आदि सहित।)

श्रेणी–डी : एकल स्वामित्व/व्यक्तिगत कंपनी/निर्माता कंपनी : रु 5000.00 प्रति वर्ष

श्रेणी–ई : प्राइवेट लिमिटेड, पब्लिक लिमिटेड, सरकारी संस्थान : रु 10000.00 प्रति वर्ष

पंजीकरण राशि का भुगतान (गैर–वापसी योग्य) बैंक डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से ICAR इकाई CSWRI अविकानगर, के नाम पर या ऑनलाइन ट्रांसफर संस्थान के बैंक खाता संख्या 51066000084, IFSC कोड – SBIN0031088 में करना होता है।

कृषि व्यवसाय उद्‌भवन केन्द्र की प्रबंधन एवं गतिविधियाँ

संस्थान के निदेशक के नेतृत्व में वैज्ञानिकों की टीम योजना के तहत निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास कर रही है। भेड़, खरगोश और उत्पाद प्रसंस्करण इकाई और ऊन, मांस और दूध के मूल्यवर्धन पर व्यवसाय स्थापित करने के लिए कोई भी इच्छुक युवा उद्यमी, कृषि और इंजीनियरिंग स्नातक निदेशक, भा. कृ. अनु. प. – केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर अथवा प्रधान अन्वेषक, कृषि व्यवसाय उद्‌भवन केन्द्र, अविकानगर से सम्पर्क कर सकता है। टीम के अथक प्रयासों से संस्थान में तीन इन्क्यूबेटर्स को पंजीकृत करवाया गया है एवं दो इन्क्यूबेटर्स ने सैद्धान्तिक सहमति प्रदान की है। इन इन्क्यूबेटर्स द्वारा मुख्य रूप से व्यवसायिक खरगोश पालन, अविका मिन–मिक्स बनाने की तकनीक, ऊन से निर्मित नोन–वोवन उत्पादों की कृषि में उपयोगिता, व्यर्थ ऊन से जैविक खाद का निर्माण, शुद्ध पश्मीना शॉल के निर्माण की तकनीकी स्थानान्तरण हेतु दिलचस्पी दिखाई है। इन तकनीकियों का व्यवसायिक स्तर पर परीक्षण कर स्ट्रार्ट–अप स्थापित किये जाने का लक्ष्य है।

देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

रविशंकर शुक्ल

पशु बीमा : किसानों के सवाल-जवाब

राज कुमार, रंग लाल मीना, इन्दु देवी, गोपाल गोवाने, रामेश्वर लाल मंडिवाल,
रामधन गसवा एवं बलवीर सिंह साहू

प्रश्न 1-पशु बीमा से क्या तात्पर्य है?

उत्तर- आसान भाषा में बीमा का अर्थ है आर्थिक सुरक्षा। यानि, बीमा भविष्य में किसी भी प्रकार के नुकसान की आशंका से निपटने का एक सर्वोतम साधन है। हम सब जानते हैं कि भविष्य के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं है। हम आने वाले कल या सप्ताह या फिर महीने के बारे में कुछ भी भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं। जैसे अगले मानसून में बारिश कैसी होगी या अगली सर्दी कैसी होने वाली है। इस सब का असर हमारी फसल एवं पशुधन के उत्पादन पर पड़ता है। परंतु यदि हम पहले से ही अपनी योजना बना लें, तो हम आशंकित नुकसान से बच सकते हैं या फिर काफी हद तक कम कर सकते हैं। यहाँ हमारा तात्पर्य बीमा से है। पशु बीमा एक तरह का अनुबंध होता है जो बीमा कंपनी एवं पशु मालिक के मध्य होता है। इस अनुबंध के तहत पशु मालिक एक निश्चित राशि बीमा कंपनी को चुका कर पशु की बीमा पॉलिसी खरीदता है। बीमा अवधि के दौरान पशु की यदि मृत्यु हो जाती है या किसी भी तरह की चोट से पशु की उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है, तो उस एवज में बीमा कंपनी पशु मालिक को पशु की कीमत या फिर पशु का जितने का बीमा हुआ है उतने के बराबर राशि या मुआवजा देती है।

प्रश्न 2-एक किसान अपने पशुओं का बीमा कैसे करवा सकता है?

उत्तर- बहुत सारी कंपनियाँ हैं जो पशुओं के लिए बीमा सुविधा प्रदान करती हैं। कंपनियाँ बहुत ही आकर्षक दरों पर बीमा योजना की सुविधा प्रदान करती हैं। इन सभी कंपनियों की प्रीमियम दरों में जरूर अंतर हो सकता

है। प्रीमियम दरें आम तौर पर गाय एवं भैंस के लिए पशु की मौजूदा कुल कीमत का 3–4% एवं तीन साल के लिए बीमें की दर पशु की कुल कीमत का 8–10% तक हो सकती हैं। बीमा कंपनी पशुओं की स्वास्थ्य जांच, उत्पादन क्षमता, उम्र, पशु की मार्केट कीमत इत्यादि का आकलन कर पशु बीमा प्रीमियम की दरें तय करती हैं। परंतु ये दरें विभिन्न कंपनियों पर भी निर्भर करती हैं। देशी, संकर नस्ल के दूध देने वाले पशु गाय, भैंस, भार ढोने वाले ऊंट, घोड़ा, गधा, सांड़, पाड़ा तथा अन्य पशु बकरी, भेड़ एवं सूअर का बीमा प्रीमियम दर पर करवाया जा सकता है। कंपनियाँ मुर्गी पालन पर भी बीमा सुविधा प्रदान करती हैं। भेड़, बकरी एवं सूअर के लिए बीमा प्रीमियम दरें आमतौर पर एक साल के लिए 4–5% एवं तीन साल के लिए 10–12% हो सकती हैं। रोग या दुर्घटना से बीमित पशु की मृत्यु होने पर 100 प्रतिशत बीमा लाभ दिया जाता है। अनुदानित बीमा के लिए दुधारु गाय की कीमत रुपए 40 हजार, भैंस की 50 हजार, भार ढोने वाले पशु जैसे ऊंट, घोड़ा, गधा, सांड, पाडा की अधिकतम कीमत 50 हजार रुपए तक हो सकती है।

प्रश्न 3-पशु बीमा का लाभ लेने के लिए क्या करना होगा?

उत्तर- पशुपालकों को अपने पशुओं को बीमा करवाने के लिए संबंधित पशु चिकित्सालय या फिर बीमा एजेंट या बीमा ऑफिस में पशु बीमा के लिए सूचित करना होता है। सूचना के बाद पशु चिकित्सक एवं संबंधित बीमा कंपनी अधिकारी या अभिकर्ता पशुपालक के घर पहुँचते हैं। वहां पर पशु चिकित्सक द्वारा पशु का स्वास्थ्य परीक्षण कर स्वास्थ्य प्रमाण पत्र जारी किया जाता है। पशु का बीमा करने के दौरान बीमा कंपनी द्वारा पशु के कान में टैग लगाया जाता है, जिस पर एक खास नंबर खुदा होता है। वह टैग एवं नंबर यह दर्शाता है कि पशु का बीमा करवाया हुआ है। पशुपालक की पशु के साथ संयुक्त फोटो ली जाती है। पशु का बीमा होने के बाद कान में लगाया जाने वाला टैग यदि गिर जाता है तो पशुपालक द्वारा बीमा कंपनी को सूचना दी जाएगी जिससे बीमा कंपनी पशु के नया टैग लगा सके। बाद में पशु का बीमा कर पॉलिसी जारी कर दी जाती है। पशु का बीमा एक साल या फिर तीन साल के लिए करवाया जा सकता है। जैसा कि हमने पहले भी कहा कि बीमा प्रीमियम की दरें एक साल के लिए कम एवं तीन साल के लिए अधिक होती हैं। एक साल का बीमा पशु को केवल एक साल की बीमा सुरक्षा प्रदान करता है, एवं तीन साल का तीन साल तक के लिए। एक पशु का भी बीमा करवाया जा सकता है एवं एक से ज्यादा का भी। भेड़ एवं बकरियों में सामान्य तौर पर भेड़ बकरी समूह में बीमा किया जाता है। सभी भेड़ एवं बकरियों के कान में टैग लगाया जाता है। जिस दिन से हम बीमा प्रीमियम राशि कंपनी को चुकाते हैं, उसी दिन से पशु की बीमा अवधि शुरू हो जाती है। जितनी अवधि के लिए बीमा करवाया गया है, पशु उस अवधि के दौरान बीमा योजना के अंतर्गत आता है। इस दौरान यदि पशु की मृत्यु हो जाती है, तो उस अवस्था में बीमा कंपनी किसान को तय राशि या कहें बीमित राशि का भुगतान अदा करती है।

प्रश्न 4-पशु बीमा के लिए किन किन कागजात की जरूरत पड़ती है?

उत्तर - पशु बीमा के लिए पशु का स्वास्थ्य प्रमाण पत्र, पशु के कान में टैग सहित पशुपालक का फोटो, यदि बीमा किसी सरकारी योजना के अंतर्गत करवाया गया है तो BPL कार्ड, SC, ST से संबंधित दस्तावेजों की कॉपी, बैंक का नाम, खाता संख्या, IFSC कोड, आधार कार्ड की कॉपी, प्रीमियम राशि सर्विस टैक्स के साथ इत्यादि। टैग एवं फोटो की राशि बीमा कंपनी द्वारा ही दी जाती है। किसान भाइयों को यहाँ सलाह दी जाती है कि पशु के बीमा संबन्धित सभी

कागजात संभाल कर रखें, जिससे उन्हें बीमा का क्लेम करने में कोई भी असुविधा न हो। बीमा के सभी नियम एवं शर्ते भी बीमा कंपनी से समझ लेवें।

प्रश्न 5-बीमा कंपनियाँ पशु की बीमित राशि का निर्धारण कैसे करती हैं?

उत्तर- बीमा कंपनियाँ पशु चिकित्सक की सलाह से पशु उत्पादन क्षमता, पशु की उम्र, पशु का स्वास्थ्य एवं पशु की मार्केट कीमत के आधार पर पशु की बीमित राशि का निर्धारण करती हैं। तत्पश्चात, पशुपालक को उस बीमित राशि के अनुपात में बीमा प्रीमियम कंपनी को जमा करवाना होता है।

प्रश्न 6-बीमा अवधि के दौरान पशु की मृत्यु हो जाने पर पशु पालक को क्या करना होगा?

उत्तर- पशु की मृत्यु हो जाने की दशा में बीमा कंपनी के कार्यालयों के प्रतिनिधि को या उनके मोबाइल नंबर पशु की मृत्यु के बारे में सूचित करना होगा। पशु की रात्रि में मृत्यु होने की स्थिति में बीमा कंपनी को दूसरे दिन प्रातः ही सूचित किया जाना आवश्यक होगा। बीमा कंपनी द्वारा सूचना होने पर 6 घंटों की अवधि में मृत पशु का सर्वे किया जाएगा। पशु का रजिस्टर्ड पशु चिकित्सक द्वारा पोस्टमार्टम करवाया जाएगा। मृत पशु का पोस्टमार्टम करते समय फोटो ली जानी आवश्यक होती है। इसके अलावा मृत पशु की राशि का दावा किए जाने हेतु आगे बताए कार्य आपको करने होंगे।

1. सबसे पहला कंपनी को मोबाइल या SMS द्वारा सूचित करना
2. बीमा पॉलिसी की प्रति बीमा कंपनी को उपलब्ध करवाना
3. क्लेम फार्म भरकर बीमा कंपनी को उपलब्ध करवाना
4. पशु का मृत्यु प्रमाणपत्र कंपनी को प्रस्तुत करना
5. पशु चिकित्सक द्वारा पोस्टमार्टम करते हुए फोटो, पोस्टमार्टम रिपोर्ट एवं टैग बीमा कंपनी को उपलब्ध करवाना।

पशु पालक को पशु के बीमार होने के दौरान लिए गए इलाज इत्यादि की सभी कागजात संभाल कर रखें। बीमित पशु का इलाज कराते समय किसान भाईयों को सलाह दी जाती है कि वे सरकारी मान्यता प्राप्त पशु चिकित्सक से ही इलाज करवाएँ एवं इसके एवज में पशु चिकित्सक से इलाज की स्लिप जरूर ले लेवें। पशु चिकित्सक द्वारा यदि मेडिकल स्टोर से दवाइयाँ खरीदने हेतु लिखी हैं तो खरीदी दवाइयों की स्लिप भी मेडिकल स्टोर से ले लेवें। इन सभी स्लिप्स को संभाल कर रखें। यदि बाद में पशु की मृत्यु हो जाती है तो ये स्लिप बीमा कंपनी को दिखाएँ। बीमा कंपनी को इन स्लिप की केवल फोटो प्रतिलिपि ही जमा करवाएँ।

प्रश्न 7-यदि किसी कारणवश बीमा कंपनी एजेंट या पशु चिकित्सक, मृत पशु का सर्वे/पोस्ट मॉर्टम करने हेतु नहीं पहुँचते हैं तो किसान भाई क्या करें ?

उत्तर- किसान भाई कोशिश करें कि बीमा कंपनी एजेंट या पशु चिकित्सक में से कोई भी जरूर पहुंचे। सबसे पहले तो बीमा कंपनी एजेंट को पशु के मृत होने की फोन पर सूचना दें। यदि संभव हो सके तो स्वयं से भी बीमा एजेंट से मिलना चाहिए एवं उसे मृत पशु की जांच के लिए बुला लाना चाहिए। यदि बीमा एजेंट उपलब्ध नहीं है, तो पशु पालक को मृत पशु की फोटो, विभिन्न एंगलों से लेनी होती है। पशु की फोटो पास से एवं दूर से दोनों प्रकार से लेवें। पशु की

फोटो इस प्रकार से लेवें कि पशु का टैग साफ तौर से फोटो में दिखाई देवे। पशु को यदि चोट लगी है तो उस भाग की फोटो भी लेवें। फोटो इस प्रकार से लेवें कि जहां पर पशु का मृत शरीर पड़ा है, उसके आस पास की जगह, जैसे घर, पेड़ या अन्य चीजें भी दिखाई देवें। तत्पश्चात, गाँव के सरपंच या पंच की उपस्थिति में एक पंचनामा तैयार करें एवं उस पर सभी के हस्ताक्षर भी करवाएँ। उसे दो प्रतिलिपि में तैयार करवाएँ। एक बीमा कंपनी को जमा करवाएँ एवं दूसरा स्वयं के लिए संभाल कर रखें।

प्रश्न 8-क्या बीमा अवधि की समाप्ति पर बीमा कंपनी किसान को कोई राशि वापिस प्रदान करती है?

उत्तर- नहीं, पशु बीमा अवधि की समाप्ति पर बीमा कंपनियाँ किसान को कोई भी राशि वापिस प्रदान नहीं करती हैं।

प्रश्न 9-किन परिस्थितियों में पशु की मृत्यु होने पर बीमा क्लेम दिया जाएगा एवं किन में नहीं?

उत्तर- पशु की मृत्यु सामान्य स्थिति में होने पर ही क्लेम दिया जाएगा। पशु बीमार हो गया एवं पशु चिकित्सक द्वारा इलाज करवाए जाने के पश्चात भी ठीक नहीं हुआ तब भी बीमा कंपनी पशु पालक को बीमा क्लेम राशि का भुगतान करती है। पशु की मृत्यु का कारण दुर्घटना, बिजली, बाढ़, आंधी तूफान, भूकंप, तूफान इत्यादि से होने पर ही बीमा कंपनी द्वारा क्लेम दिया जाएगा। बीमा अवधि के दौरान होने वाली बीमारी या रोग से पशु की मृत्यु यदि पशुपालक के स्तर पर हुई है, जैसे पशु बीमार होने की स्थिति में किसान द्वारा लापरवाही करना एवं पशु का इलाज नहीं कराना या फिर जानबूझकर पशु को मारा जाना इत्यादि कारणों से आपको पशु बीमा क्लेम नहीं दिया जाएगा। पशु की चोरी होने पर, गुप्त बिक्री होने पर भी क्लेम नहीं दिया जाएगा। पशु पालकों को अपने पशुओं को सभी प्रकार के टीकाकरण करवाने होते हैं, जैसे गाय एवं भैंस में मुँहपका खुरपका रोग का टीका, बी क्यू का टीका, भेड़ एवं बकरियों में काला छेरा का टीका, मुँह पका खुर पका रोग का टीका, फड़किया रोग का टीका इत्यादि। पशुओं में सभी प्रकार का टीका लगवाने की स्लिप भी संभाल कर रखें।

प्रश्न 10 - यदि कंपनी बीमा मुआवजा देने से मुकरती है, तो इसका क्या समाधान है?

उत्तर- यदि कंपनी बीमा मुआवजा देने से मुकरती है, तो पशु पालक भाई बीमा उपभोक्ता नियामक फोरम में जा कर बीमा कंपनी की शिकायत कर सकता है। जैसा कि पहले भी कहा गया है, ऐसी स्थिति में पशु पालक भाई को बीमा संबंधी सभी कागजात की प्रतिलिपियाँ फोरम में जमा करनी होती है। इसके बाद फोरम, कंपनी से जांच पड़ताल कर, पशु पालक को बीमित राशि या मुआवजा राशि दिलाती है, बशर्ते पशुपालक के स्तर पर सभी तथ्य सही हैं।

प्रश्न 11-अंत में पाठकों के लिए आप का क्या संदेश है?

उत्तर- प्रिय किसान भाइयों, अंत में हम बस यह कहना चाहते हैं, कि पशु बीमा भविष्य में पशु के साथ होने वाली किसी भी प्रकार की अप्रिय घटना में आर्थिक सुरक्षा का एक कारगर हथियार है। किसान भाई पशु उत्पादन में से ही कुछ राशि निकाल कर पशु का बीमा करवाऐं। मैं किसान भाइयों से कहना चाहता हूँ कि एक छोटी–सी फाइल बना लें। पशु के बीमा संबधित सभी कागजात उसमें संभाल कर रखें। किसान भाई बीमा कंपनी से बीमा से संबन्धित सभी पहलू, नियम एवं शर्तें समझ लें। एक महत्वपूर्ण बात और कि कभी भी गलत क्लेम का दावा प्रस्तुत न करें। क्योंकि कंपनियाँ बीमा राशि का भुगतान करने से पहले सभी तरह की जानकारी जुटाती हैं, एवं तत्पश्चात ही बीमा राशि का क्लेम पशु पालक के बैंक में जमा करवाती हैं। पशुओं का बीमा किसान को अनजाने एवं अदृश्य नुकसान से बचाने हेतु एक साधन मात्र है, यह स्वस्थ पशु एवं उसकी उत्पादन क्षमता की किसी भी रूप में बराबरी नहीं कर सकता है।

भेड़-बकरी पालकों के लिए किसान मोबाईल सन्देश सेवा

एल.आर. गुर्जर, रंगलाल मीणा, बनवारी लाल एवं एस.सी. शर्मा

आर्थिक सुरक्षा के आधार पर देखा जाये तो भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। जिसमें भारत की आर्थिक सुरक्षा लगातार कृषि क्षेत्र के आधार पर आंकी जाती रही है। आजादी के समय देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी जो कि आज के दौर में घटकर केवल 57 प्रतिशत रह गयी है, इसी अवधि में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि और कृषि सम्बन्धित क्षेत्र का योगदान 67 प्रतिशत से 14 प्रतिशत पर गिर गया है। भारत का कुल विश्व भूमि में 2.3 प्रतिशत हिस्सा है और इन संसाधनों में विश्व की 16.8 प्रतिशत आबादी निवास करती है। पिछले दशक के दौरान यह देखा गया है कि कृषि विस्तार के पारंपरिक तरीकों के प्रतिस्थापन के लिए कई नई–नई अवधारणाओं और सिद्धान्तों को प्रस्तावित एवं लागू किया गया है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का परिचय उनमें से एक ऐसी देन है जो कि उचित समय पर लोगों को सही व अपेक्षित जानकारी को प्रदान करने में सक्षम बनाता है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में यह क्रांति ग्रामीण जनता को कम लागत व उचित समय पर सूचना प्रदान करने में प्रभावी एवं उपयोगी है। वर्तमान में, किसानों के लिए विस्तार कार्यकर्ताओं का अनुपात बहुत कम है और राज्यों में कृषि विकास अधिकारियों के विषय विशेषज्ञता की कमी है। इन मुद्दों ने किसानों को सही मार्गदर्शन, अतिशीघ्र मदद, व उनके कौशल को बढ़ावा दिए जाने की तत्परता को उजागर किया है। कम लागत व उचित समय पर सूचना के प्रसार और लक्षित कृषकों तक पहुँचने में कठिनाईयों ने आईसीटी को लोकप्रिय बनाया है। कम से कम समय और कीमत पर कृषि एवं पशुपालन संबंधी जानकारियों को लक्षित कृषकों तक पहुंचाना आईसीटी के प्रमुख लाभ हैं। भारतीय कृषि में आईसीटी के कई मॉडल उपयोग में हैं, जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में सेवाओं के वितरण में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

किसान मोबाईल संदेश सेवा (एम किसान पोर्टल) केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर द्वारा भेड़–बकरी पालकों तक नवीनतम जानकारी के साथ प्रौद्योगिकी हस्तानान्तरण के लिए सफलतापूर्वक उपयोग में लिया जा रहा है। संस्थान में इसकी शुरूआत वर्ष 2015 के दौरान की गई थी। यह विभिन्न हितधारकों के बीच संबंध बनाने के लिए अनूठा कार्यक्रम है जो आने वाले भविष्य में मोबाईल फोन की तरह आईसीटी उपकरण के गहन प्रयोग के माध्यम से भारत में टिकाऊ खेती एवं पशुपालन को बढ़ावा देने में प्रमुख घटक का काम करेगा। संस्थान के वैज्ञानिकों एवं विषय विशेषज्ञों द्वारा भेड़–बकरी पालकों को जनवरी, 2020 तक संस्थान द्वारा भेजे गए 25 लघु संदेश सेवा (एमएमएस) से 4461 भेड़–बकरी पालक लाभान्वित हुये हैं। इतनी कम लागत और सीमित समय में विशाल भेड़–बकरी पालकों तक सम्बन्धित जानकारी किसी भी एकल चैनल द्वारा नहीं पहुँचाई जा सकती है। इसके महत्व और पशुपालन के क्षेत्र में बाधाओं को देखते हुए, संस्थान द्वारा किसान मोबाईल संचार सेवा को निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ अवधारित किया गया है।

1. भेड़–बकरी पालकों की जानकारी के वितरण प्रणाली की गतिशीलता को मापने हतु
2. भेड़–बकरी पालकों के लिए आवश्यकता आधारित और समय पर जानकारी का प्रसार
3. सीधे संपर्क करके जानकारी प्रदान करने के माध्यमों द्वारा होने वाले नुकसान को कम करना
4. शीघ्र प्रतिक्रिया तंत्र विश्लेषण
5. कार्यक्रम के प्रभाव का आंकलन

किसान मोबाईल संचार सन्देश की मूल अवधारणा

किसान मोबाईल सेवा संचार के लिनयर मॉडल पर आधारित है इस संचार प्रक्रिया में प्रेषक, संदेश चैनल और रिसीवर ये चार प्रमुख घटक शामिल हैं।

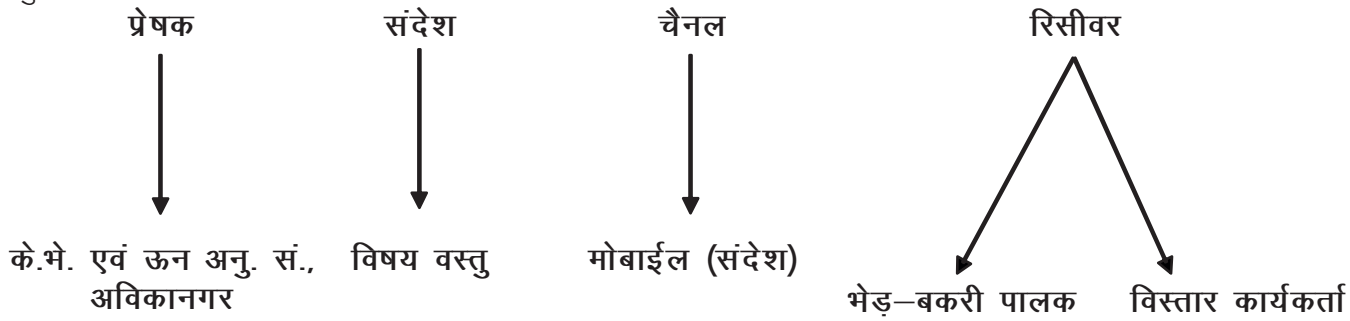

रेखा–चित्र 1 – किसान मोबाईल संचार संदेश पर आधारित प्रे.स.च.रि मॉडल

किसान मोबाइल सन्देश सेवा की प्रक्रिया

किसान मोबाइल सन्देश सेवा प्रक्रिया में कृषि विकास अधिकारी, किसान, विस्तार कर्मी, गैर सरकारी संगठन के पदाधिकारी आदि प्रमुख हितधारक शामिल हैं।

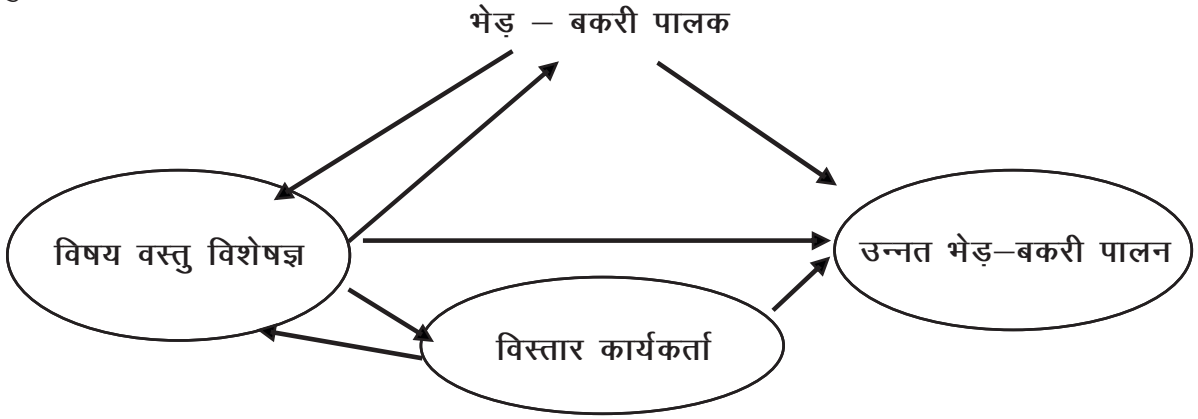

रेखा–चित्र 2– सूचना के प्रवाह का योजनाबद्ध रेखा–चित्र

विषय–सामग्री का विकास

विषय–सामग्री के विकास के लिए संस्थान द्वारा सामान्यतया निम्न चरणों का उपयोग किया जाता है।

क्षेत्र का दौरा, प्रतिक्रिया, मौसम पूर्वानुमान

↓

समस्याएं

↓

कारक

↓

विषय

↓

संदेश

रेखा –चित्र 3 – सामग्री के विकास के प्रमुख कदम

किसान मोबाइल सन्देश सेवा

किसान मोबाइल सन्देश सेवाओं से भेड़–बकरी पालकों को, भेड़–बकरी पालने से सम्बन्धित नवीन जानकारी जैसे नस्ल सुधार, पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन, पोषण प्रबन्धन, आवास प्रबन्धन एवं उन्नत किस्म का चारा उत्पादन सम्बन्धित जानकारी प्रदान करता है। यह किसानों को लघु सन्देश सेवा प्रदान करता है। यह भेड़–बकरी पालकों और विस्तार कर्मियों को नवीनतम पशुपालन सम्बन्धित जानकारी प्रदान करने में सहायक है।

भेड़ पालक, आगामी वर्षा ऋतु के मौसम को ध्यान में रखते हुये वर्षा शुरू होने के 15 दिन पहले ही अपनी भेड़ों में फड़किया रोग के रोकथाम हेतु टीकाकरण अवश्य करवायें

निष्कर्ष वर्तमान में सरकारों के पास मानव संसाधनों की कमी से कृषि विस्तार सेवायें खेती के लिए वैज्ञानिक तकनीक और पर्याप्त रूप से जानकारियां किसानों एवं पशुपालकों को उपलब्ध कराने में असमर्थ हैं। मौजूद कृषि एवं पशुपालन कृषि विस्तार प्रणाली के उत्थान के लिए मोबाइल सक्षम सेवायें मोबाइल फोन द्वारा संभव हैं। मोबाइल सन्देश सेवा किसानों के लिए स्वयं जीविका खेती से उच्च आय सृजन के अवसर और कृषि में विविधता लाने के लिए एक सक्षम क्षमता रखता है। किसानों के लिये आपात स्थिति का सामना करने के लिये आकस्मिक योजनायें बना कर कम समय में अधिक से अधिक किसानों तक मोबाइल सन्देश सेवा द्वारा कृषि एवं पशुपालन से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिये सूचनायें पहुंचाई जा सकती हैं। कोविड –19 जैसी महामारी के समय में यह सेवा अत्यधिक सफल साबित होती है।

भाषा की सरलता, सहजता और शालीनता अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है।
हिंदी ने इन पहलुओं को खूबसूरती से समाहित किया है।

नरेंद्र मोदी (प्रधानमंत्री)

भेड़ पालन को बढ़ावा देने में प्रसार तकनीकियों का महत्व

एल.आर. गुर्जर, राजकुमार, एवं एस.सी. शर्मा

वर्तमान परिदृश्य में भेड़ पालन का महत्व

भारत की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतया कृषि पर आधारित है। जिसकी लगभग 58 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं कृषि सम्बन्धित आयामों पर आश्रित है। यदि पशुपालन के क्षेत्र में देखा जाये तो भेड़–बकरी पालन भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है और यह व्यवसाय शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्र में किसानों की आजीविका में एक विशेष योगदान रखता है। भेड़–बकरी पालन व्यवसाय प्राचीन समय से पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा है। और यह व्यवसाय कृषि उत्पाद प्रणाली का एक अभिन्न अंग है। साथ ही उनके लिए महत्वूर्ण रोजगार एवं घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आकस्मिक आय का अच्छा स्त्रोत है। आय के साथ–साथ भेड़–बकरी मांस के रूप में प्रोटीन का भी अच्छा स्त्रोत माना जाता है। भेड़ – बकरी बहुउपयोगी जानवर हैं जिनसे मांस, बाल, दूध, खाल एवं खाद आदि उत्पाद प्राप्त होते हैं। सरकार लगातार इस क्षेत्र में सुधार लाने के प्रयास कर रही है। ताकि उद्योग के रूप में इस क्षेत्र का विकास हो सके एवं आनुवंशिक रूप से बेहतर पशुधन उपलब्ध हो। इस उद्देश्य से विभिन्न योजनायें संचालित की जा रही हैं, ताकि पशुओं की उत्पादकता को बढाया जा सके। भेड–बकरी पालक मुख्यतया आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े हुए होते हैं। साथ ही शिक्षा का स्तर भी काफी निम्न रहता है। संचार एवं परिवहन के संसाधनों की कमी रहती है। इन सभी मुख्य समस्याओं को ध्यान में रखते हुए भेड–बकरी पालन के क्षेत्र में विकसित नवीनतम तकनीकियों को किसानों तक पहुचाने में प्रसार के माध्यमों का महत्वपुर्ण योगदान है। प्रसार के माध्यमों द्वारा अनुसंधानकर्ता, प्रसार कर्मी एंव इस क्षेत्र में कार्य कर रहे व्यक्ति किसानों की आवश्यकताओं एवं समय के आधार पर उचित सुझाव एवं उपाय पहुंचा सकते हैं। लघुरोमन्धी पशुओं की उत्पादकता में सुधार के लिए एक मजबूत, प्रभावी, कुशल एवं सतत् विस्तार वितरण प्रणाली की आवश्यकता है।

प्रसार क्या है

कृषि विस्तार/प्रसार सामान्यतः ऐसी प्रक्रिया और प्रणाली है जिसमें कृषि पद्धतियों से संबंधित सूचना, ज्ञान और कौशल उनके हितधारकों को विभिन्न चैनलों के माध्यम से संप्रेषित किया जाता है। कृषि विस्तार ज्ञान का निर्माण, प्रसार एवं सक्षम निर्णयकर्ता बनने के लिए कृषकों को शिक्षा प्रदान करने में 'केन्द्र बिंदु' माना जाता है। कृषि विस्तार का प्राथमिक लक्ष्य कृषक परिवारों की तेजी से परिवर्तित होती सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उनके उत्पादन और विपणन संबंधी रणनीतियों को उनके अनुकूल बनाने में सहायता करना है ताकि वे आगे चलकर अपनी निजी तथा समुदाय की प्राथमिकताओं के अनुसार अपने जीवन को ढाल सकें। कृषि क्षेत्र में, ज्ञान और निर्णय लेने की क्षमता यह अवधारित करती है कि किस प्रकार उत्पादन कारकों जैसे मृदा, जल और पूंजी का उपयोग किया जा सकता है। ज्ञान का सृजन करने और उसका प्रसार करने, तथा कृषकों को निर्णय लेने में सक्षम बनाने के लिए कृषि विस्तार की केन्द्रीय भूमिका है। अतः विस्तार अधिकांश विकास परियोजनाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रसार/विस्तार के कार्य

ज्ञान में परिवर्तन ज्ञान में परिवर्तन का अर्थ उस बात में परिवर्तन है जो लोग जानते हैं। उदाहरण के लिए जो किसान एचवाईवी (अधिक उत्पादक किस्म) फसल के बारे में नहीं जानते हैं, वे विस्तार कार्यक्रमों में भाग लेने के माध्यम से इसके बारे

में जान जाते हैं। विस्तार अभिकर्ता जो सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) को नहीं जानते हैं, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में भाग लेने के पश्चात इस विषय में जान जाते हैं।

कौशल में परिवर्तन कौशल में परिवर्तन कार्य को करने की तकनीक में परिवर्तन है। किसानों ने एचवाईवी (अधिक उत्पादक किस्म) फसल को उगाने की तकनीक सीखी, जिसे वे पहले नहीं जानते थे। विस्तार अभिकर्ता ने आईटी को प्रयोग करने का कौशल सीखा।

अभिवृत्ति में परिवर्तन अभिवृत्ति में परिवर्तन से तात्पर्य बातों के प्रति भावना या प्रतिक्रिया परिवर्तन शामिल है। किसानों ने एचवाईवी फसल के प्रति एक अनुकूल अभिवृत्ति विकसित की। विस्तार अभिकर्ता ने विस्तार कार्यक्रम में इसके प्रयोग के बारे में अनुकूल भावना विकसित की।

समझ में परिवर्तन समझ में परिवर्तन का अर्थ है बोध में परिवर्तन। किसानों ने विद्यमान फसलों की किस्मों की तुलना में अपने कृषि प्रणाली में एचवाईवी फसल के महत्व तथा उस परिमाण को महसूस किया जिस तक यह उनके लिए आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद तथा वांछनीय है। विस्तार अभिकर्ता ने आईटी के प्रयोग के परिमाण को समझा जिससे यह विस्तार कार्य को और अधिक प्रभावी बनाती है।

लक्ष्य में परिवर्तन लक्ष्य में परिवर्तन किसी निश्चित दिशा में वह दूरी है जिसे निर्धारित समयावधि के भीतर किसी व्यक्ति के द्वारा तय किया जाता है। यह वह परिमाण है, जिस तक कृषकों ने फसल उत्पादन में अपने लक्ष्य को उपर उठाया है, अर्थात् एचवाईवी फसल की पैदावार करके किसी मौसम विशेष में फसल की पैदावार प्रति हेक्टेयर पांच क्विंटल बढ़ाना। विस्तार अभिकर्ता ने सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके एक निश्चित अवधि के भीतर किसानों द्वारा अपनाई गई संवर्धित प्रक्रिया हासिल करने का लक्ष्य निर्धारित किया।

कार्रवाई में परिवर्तन कार्रवाई में परिवर्तन का अर्थ है निष्पादन या चीजों को करने में परिवर्तन। जिन किसानों ने पहले एचवाईवी फसल नहीं उगाई, उन्होंने अब उसे उगाया। जिन विस्तार अभिकर्ता ने पहले इनका प्रयोग अपने विस्तार कार्यक्रमों में नहीं किया, उन्होंने इसका प्रयोग आरंभ कर दिया।

आत्मविश्वास में परिवर्तन आत्मविश्वास में परिवर्तन में आत्मनिर्भरता शामिल है। किसानों ने यह निश्चित कर लिया कि उनमें फसल की पैदावार बढ़ाने की योग्यता है। विस्तार अभिकर्ता ने बेहतर विस्तार कार्य करने के लिए अपनी योग्यता में आस्था विकसित कर ली। आत्मविश्वास अथवा आत्मनिर्भरता का विकास हमारी प्रगति के लिए ठोस आधार है।

व्यवहार में परिवर्तन व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाना विस्तार का महत्वपूर्ण कार्य है। इस प्रयोजनार्थ, विस्तार कार्मिक विस्तार कार्य को अधिक प्रभावी बनाने के लिए निरंतर नई जानकारी की तलाश करेंगे। किसान और गृहणियां भी अपनी स्वयं की पहल से निरंतर अपने खेत तथा घर में सुधार लाने के तरीके ढूंढ़ती हैं। यह कार्य कठिन है क्योंकि लाखों किसान परिवार कम शिक्षित होने के साथ–साथ अपनी–अपनी आस्थाओं, मूल्यों, अभिवृत्तियों और बाधाओं के साथ विशाल क्षेत्र में फैले हुए हैं तथा विविध उद्यमों में कार्यरत हैं।

प्रसार की तकनीकियाँ एवं उनका महत्व

1. **व्यक्तिगत सम्पर्क** इस तकनीकी में किसानों की व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने के लिए व्यक्तिगत सम्पर्क के आधार पर विस्तार कार्यकर्ता समस्याओं का हल निकालता है। इस विधि से प्रथम जानकारी के आधार पर

समस्याओं और उनके कारणों की पहचान करना आसान रहता है। साथ ही समस्याओं को समझकर तत्काल फीडबैक प्राप्त कर सकता है। जिसके माध्यम से प्रसार कार्यकर्ता उचित सुझावों की अनुशंषा कर सकता है। प्रसार कार्यकता के व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण किसान उनकी सलाह एवं सुझावों को महत्व देते हुए सुनेंगे।

व्यक्तिगत सम्पर्क तकनीकी के नुकसान

- समय एवं निवेश संबंधी आवश्यकताओं के संदर्भ में अपेक्षाकृत महंगा है
- निश्चित अवधि में ज्यादा किसानों के पास नहीं पहुंचा जा सकता
- प्रसार कार्यकर्ता द्वारा व्यक्ति विशेष के पक्षपात की संभावना रहती है

व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम

- प्रक्षेत्र भ्रमण
- टेलीफोन कॉल
- व्यक्तिगत पत्र
- परिणाम प्रदर्शन
- कार्यालय परामर्श

2. **समूह सम्पर्क** यह तकनीकी तब काम आती है जब एक या एक से अधिक प्रसार कर्मी किसानों के समूह में साथ मिलते हैं। इसका उद्देश्य स्थानीय कौशल विकसित करना एवं लोगों को अपनी समस्याओं का समाधान करने के लिए सशक्त बनाना है। किसी समुदाय या गांव से संबधित समस्याओं का हल करने में यह तकनीक विशेष रूप से उपयुक्त रहती है।

समूह सम्पर्क तकनीकी के नुकसान

- व्यक्तिगत समस्याओं का समूह में हल नहीं किया जा सकता
- जमीनी स्तर से पर्याप्त फीडबैक लेने एवं सही निर्णय पर पहुंचने में समय लगता है
- समूह के आपसी मुदों पर सहमति होना मुश्किल हो सकता है
- समूह में समान रूचि और समझ न होने से आपसी मतभेद हो सकता है

समूह सम्पर्क के माध्यम

- स्वयं सहायता समूह मीटिंग
- उन्नत भेड़–बकरी पालन पर प्रशिक्षण कार्यक्रम
- अनुसंधान संस्थानों का भ्रमण
- कृषक प्रक्षेत्र स्कूल
- सहकारी समितियों का गठन

3. **आम / सामूहिक सम्पर्क** इस तकनीक का एक सूचना को काफी ज्यादा संख्या में पहुँचाने हेतु उपयोग करते हैं। इस पद्धति से दूर–दराज के इलाकों में थोड़े समय के भीतर ही संदेश पहुचाया जा सकता है।

आम / सामूहिक सम्पर्क तकनीकी के नुकसान

- सूचना का एक तरफा प्रवाह
- सूचनाओं के प्रभाव का मूल्यांकन करने में कठिनाई आती है।

आम / सामूहिक सम्पर्क के माध्यम

- मोबाइल संदेश सेवा
- रेडियो
- टेलिविजन
- मेला
- प्रदर्शनी
- पोस्टर
- पम्पलेट
- कृषक सफलता की कहानियाँ

उपरोक्त प्रसार तकनीकियों एवं विधियों के एकल एवं सामूहिक उपयोग से कृषकों के ज्ञान एवं कौशल को बढाया जा सकता है। जिससे खेती एवं जानवरों की उत्पादकता बढ़ाकर किसानों की आजीविका पर वास्तविक असर हासिल किया जा सकता है। प्रसार कार्यकर्ताओं एवं विकास एजेंटों को भेड़ एवं बकरी उत्पादन की तकनीकी जानकारी के साथ–साथ किसानों तक तकनीकियों को पहुचाने का भी कौशल एवं ज्ञान होना जरूरी है।

हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

स्वामी दयानंद

अनुसूचित जातीय उपयोजना : गरीबों की आजीविका सुदृढ़ करने की एक पहल

एल.आर. गुर्जर, डी.बी. शाक्यवार, अजय कुमार, एम.सी. मीना एवं राजेन्द्र कुमार माछुपुरिया

अनुसूचित जातीय उपयोजना विशेष केंद्रीय सहायता योजना के तहत राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा चलाई जा रही योजना है। जिसका प्रमुख उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले अनुसूचित जाति के लोगों को संसाधन प्रदान करके एवं महत्वपूर्ण निवेश करके उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना है।

योजना के उद्देश्य

1. विभिन्न आय सृजन योजनाओं, कौशल विकास और बुनियादी ढांचे के विकास के माध्यम से लक्षित आबादी की आय में वृद्धि करना।
2. लक्षित आबादी के बीच गरीबी को कम करके उन्हें गरीबी रेखा से ऊपर लाना।

योजना के घटक

मुख्यतः इस योजना के तहत बजट का उपयोग निम्नलिखित गतिविधियों के लिए किया जाता है।

1. आय सृजन योजनाएं
2. कौशल विकास कार्यक्रम
3. बुनियादी ढांचे का विकास
4. निगरानी और मूल्यांकन

1. आय सृजन योजनाएं

संस्थागत वित्त और सब्सिडी के माध्यम से आय सृजन करने की सक्षम गतिविधियों से अनुसूचित जाति के परिवारों की सहायता की जाती है जिसके अंतर्गत लाभार्थी को विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है। विशेष केंद्रीय सहायता का उपयोग आय सृजन योजनाओं के चयन में संस्थान भी लचीलापन प्रदान करता है। साथ ही आवश्यकता के अनुसार अनुसूचित जातियों के आर्थिक विकास के लिए योजनाओं की पहचान की जाती है।

योजनाओं की सूची निम्न प्रकार है

1. कृषि

(क) अनुसूचित जाति के किसानों के लिए प्रशिक्षण सह–निरूपण ।

(ख) कृषि विभाग के सामान्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त अनुसूचित जाति के किसानों को बीज उर्वरक, मिनी किट्स और कीटनाशक संवितरित करना।

(ग) अनुसूचित जाति के किसानों की भूमि में वाणिज्यिक फसल कार्यक्रम।

(घ) कृषि विभाग के सामान्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त अनुसूचित जाति के किसानों की भूमि में अधिक उत्पादन संबंधी विविधि कार्यक्रम ।

(ड.) अपनी भूमि के सुधार,विकास के लिए अनुसूचित जातियों के लोगों, भूमिहीन कृषि मजदूरों को सहायता करना।

2. बागवानी

(क) अनुसूचित जाति लाभार्थियों की भूमि में फल एवं सब्जी की खेती आरंभ करना।

(ख) फल एवं सब्जी उगाने एवं उत्पाद के विपणन में अनुसूचित जाति के लोगों को प्रशिक्षित करना

(ग) उपरोक्त से संदर्भित लघु नर्सरी बीज फार्म ।

3. भूमि सुधार

(क) उन अनुसूचित जाति परिवारों, जिनको भूमि का विकास करने और कृषि कार्य हेतु अतिरिक्त भूमि आवंटित की गई है, को सहायता करना ।

(ख) 50 % या इससे अधिक अनुसूचित जाति आबादी वाले ब्लाकों के भूमि रिकॉर्ड तैयार करना

4. लघु सिंचाई

(क) बांधों, दिशा–परिवर्तन चैनलों, जल–एकत्रीकरण संरचना की जांच करना, और 50 % या इससे अधिक अनुसूचित जाति आबादी वाले क्षेत्रों में अनुसूचित जाति समूहों समुदाय के लिए कुंआ, टयूबवेल खोदना और सहकारी लिफ्ट प्वाइंट बनाना ।

(ख) कुंआ खोदने, टयूबवेल, सिंचाई पम्प सेट, फार्म तालाबों के लिए व्यक्तिगत लाभार्थियों के लिए सब्सिडी सहायता ।

5. भू–संरक्षण

(क) भू–संरक्षण उपायों के रूप में अनाज एवं मसालों का रोपण करना ।

6. पशु–पालन

(क) अनुसूचित जाति परिवारों के लिए दूध देने वाले पशुओं, मुर्गा–मुर्गी, बकरी, भेड़, सूअर एवं बतख यूनिटों की आपूर्ति करना ।

(ख) अनुसूचित जातियों की पर्याप्त आबादी वाले क्षेत्रों में दुग्ध एवं मुर्गा–मुर्गी सहकारी समितियों को सहायता करना ।

7. वन खंड

(क) अनुसूचित जाति परिवारों को लाभ प्रदान करते हुए सामाजिक एवं कृषि – वनखंड का विकास करना

8. मत्स्य पालन

(क) मत्स्य पालन के लिए अनुसूचित जाति परिवारों को सहायता ।

(ख) मत्स्य उत्पादन, एकत्रीकरण आदि में अनुसूचित जातियों को प्रशिक्षण ।

(ग) अनुसूचित जाति मछुआरों समितियों का विकास।

(घ) मछली पकड़ने वाली नावों, जाल आदि की खरीद के लिए अनुसूचित जाति के मछुआरों को सब्सिडी सहायता।

9. ग्रामीण एवं लघु उद्योग

(क) उत्पादन की आधुनिक विधि में पारम्परिक अनुसूचित जाति शिल्पकारों को कौशल विकास प्रशिक्षण करना ।

(ख) व्यवसाय और लघु एवं कुटीर उद्योग स्थापित करने के लिए अनुसूचित जाति के शिल्पकारों कारीगरों को सहायता ।

(ग) अनुसूचित जातियों के लिए उदयमिता विकास प्रशिक्षण ।

(घ) मधुमक्खी पालन

(ड) रेशम – उत्पादन

(च) अनुसूचित जाति परिवारों के मध्य नए शिल्प कार्यक्रमों की शुरूआत ।

10. सहकारी समितियां

(क) नई सहकारी समितियों का गठन और चमड़ा उद्योग, बुनाई और ईंट बनाना आदि जैसे पारम्परिक व्यवसायों में उद्यमों को बढ़ावा देने के लिए अनुसूचित जाति के पर्याप्त सदस्यों वाली विद्यमान सहकारी समितियों को सुदृढ़ बनाना ।

(ख) उपभोक्ता सहकारी समितियों, मजदूर सहकारी समितियों और अनुसूचित जाति के पर्याप्त सदस्यों वाली अन्य सहकारी समितियों को सुदृढ़ बनाना ।

(ग) उपभोज्य मदों आदि के उत्पादन में संलग्न अनुसूचित जाति सहकारी को कार्य संचालन पूंजी सहायता

(घ) सहकारी समितियों के अनुसूचित जाति सदस्यों को सहकारी समितियों के प्रबंधन एवं प्रशासन में प्रशिक्षण।

11. शिक्षा

(क) लघु स्तरीय साक्षरता वाले क्षेत्रों में आवासीय स्कूल की स्थापना और संचालन ।

(ख) अनुसूचित जातियों के लिए स्थापित स्कूलों छात्रावासों की मरम्मत और समुचित रखरखाव

12. अनुसूचित जाति महिलाएं

अनुसूचित जाति महिलाओं के उपभोक्ता सामानों के उत्पादन और विपणन के लिए उनको तथा उनकी सहकारिता समितियों को सहायता। पारिवारिक जीविकोपार्जन में सुधार के लिए बनाई गई योजनाओं में अनुसूचित जाति महिलाओं को प्रशिक्षण

13. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण

परिवारोन्मुखी पारिस्थितिकी कार्यक्रमों से संबंध रखने वाले पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण के सुधार कार्यक्रम।

14. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम

(क) 50 % या इससे अधिक अनुसूचित जाति आबादी वाले क्षेत्रों में होमियोपैथिक, नेचुरोपैथिक एवं योग संबंधी उपचारों के लिए औषधालय अस्पताल केन्द्र स्थापित करना।

(ख) सचल चिकित्सा औषधालयों की स्थापना, जिससे कि सभी अनुसूचित जाति बहुल क्षेत्रों को स्वास्थ्य सेवाओं के प्रावधान के लिए लक्षित किया जा सकें।

(ग) अनुसूचित जाति आबादी वाले क्षेत्रों के लिए विद्युत आपूर्ति और लाइट का प्रावधान ।

(घ) अनुसूचित जाति आबादी वाले क्षेत्रों में पेयजल का प्रावधान, जहां पेयजल की सुविधा नहीं है।

(ड.) 50% या इससे अधिक अनुसूचित जाति आबादी वाले क्षेत्रों ब्लाकों में ग्राम लिंक रोड और लघु सी.डी. कार्यों का विकास।

2. कौशल विकास कार्यक्रम

वित्तीय वर्ष में प्राप्त कुल विशेष केंद्रीय सहायता का 10% विभिन्न कौशल विकास योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। साथ ही कौशल विकास एवं उपयोगिता मंत्रालय के द्वारा समय–समय पर दी गई सूचनाओं के आधार पर कौशल विकास कार्यक्रम किए जाने चाहिए। योजना के अंतर्गत लाभार्थी के लिए इस तरह का कौशल विकास कार्यक्रम बनाना चाहिए कि ताकि प्रशिक्षण उपरांत 70% प्रशिक्षणार्थियों को रोजगार या स्वरोजगार मिल सके।

3. बुनियादी ढांचे का विकास

इंफ्रास्ट्रक्चर विकास के अंतर्गत ऐसा गांव चयन करना चाहिए जिसमें अनुसूचित जाति की संख्या 50% से अधिक हो और वह गांव प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना के अंतर्गत चयनित हो। उसमें विशेष केंद्रीय सहायता से प्राप्त बजट का अधिकतम 30% ही खर्च कर सकते हैं।

इंफ्रास्ट्रक्चर विकास के कार्यक्रम

1.	पेयजल स्वच्छता	2.	शिक्षा
3.	स्वास्थ्य एवं पोषण	4.	सामाजिक सुरक्षा
5.	ग्रामीण सड़क एवं आवास	6.	बिजली एवं स्वच्छ ईंधन
7.	कृषि	8.	वित्तीय समावेशन
9.	डिजिटलीकरण	10.	आजीविका एवं कौशल विकास

4. निगरानी एवं मूल्यांकन

आर्थिक विकास योजनाओं एवं गतिविधियों की निगरानी एवं मूल्यांकन के लिए कुल विशेष केंद्रीय सहायता बजट का 3% तक उपयोग किया जा सकता है एवं प्रशासनिक कार्यों के लिए 1% तक खर्च हो सकता है।

योजना के प्रभावी क्रियान्वयन में संस्थान के प्रयास एवं गतिविधियां

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–केंद्रीय भेड़ एवं ऊंन अनुसंधान संस्थान अविकानगर द्वारा इस योजना को प्रभावी एवं रोजगारमुखी बनाने की ओर प्रयास किए जा रहे हैं। संस्थान को योजना की स्वीकृति के बाद अनुसूचित जाति के गरीब किसानों, विधवा महिलाओं एवं विकलांग व्यक्तियों की आजीविका को सुदृढ़ करने के लिए उनका सर्वेक्षण कर चयन किया गया एवं उनका आवश्यकता आधारित प्रशिक्षण के माध्यम से कौशल विकास किया जा रहा है। भेड़ बकरी एवं खरगोश पालन की नवीन तकनीकियों जैसे उन्नत नस्ल, आवास व्यवस्था, पोषण प्रबंधन, स्वास्थ्य प्रबंधन, चारा एवं चरागाह विकास आदि क्षेत्रों में उनको व्याख्यान, प्रायोगिक प्रशिक्षण के माध्यम से प्रशिक्षित किया जा रहा है। साथ ही प्रसंस्करण और उत्पाद

विनिर्माण और परिधान निर्माण पर भी महिलाओं दस्तकारों को प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है और इन प्रशिक्षणों के माध्यम से लगभग 500 किसानों युवाओं एवं महिलाओं को अपने क्षेत्र में दक्ष किया गया है। प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण के दौरान प्रतिदिन रूपये 125/– मानदेय भी दिया गया ताकि प्रशिक्षण लेने के साथ–साथ उनको मजदूरी की भी पूर्ति हो सके। बीकानेर जिले के चार विभिन्न गांवों के गरीब और वंचित भेड़ पालकों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए अनुसूचित जाति उप योजना के तहत बीस किसानों के लिए उन्नत पोषण प्रौद्योगिकी पर सात दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया गया । कौशल विकास प्रशिक्षण मुख्य रूप से अपने खेत में ज्यादातर स्थानीय रूप से उपलब्ध रेगिस्तान वनस्पति या कृषि अपशिष्ट का उपयोग कर संतुलित फीड और आर्थिक राशन की तैयारी का कौशल प्रदान करने के लिए ध्यान केंद्रित किया गया । इस प्रशिक्षण से, किसान अपने अधिशेष उत्पाद या अपशिष्टों का सर्वोत्तम उपयोग अपने कृषि क्षेत्र में उपलब्ध कराने में सक्षम होगा । इससे भेड़ पालकों को चारे की कमी और पलायन की अवधि के दौरान संतुलित पोषक तत्व उपलब्ध कराने में मदद मिलेगी। किसानों को फीड मेकिंग किट, मल्टी न्यूट्रिएंट मिश्रण, उन्नत आहार द्रोणिका और मगरा व मारवाड़ी के श्रेष्ठ मेंढ़े वितरित किए गए। अनुसूचित जाति समुदाय की महिला कारीगरों को ''ऊन–प्रसंस्करण, मूल्य वर्धन और परिधान निर्माण'' पर तीन महीने का कौशल विकास प्रशिक्षण प्रदान किया गया। सफल प्रशिक्षण के बाद इन महिलाओं को स्वरोजगार पैदा करने के लिए सिलाई मशीन उपलब्ध कराई गई। मालपुरा के स्थानीय गांव/कस्बा चांदसेन में 10 महिलाओं में से पांच महिलाओं ने खुद गारमेंट सिलाई यूनिट शुरू की। इस गतिविधि ने इन महिलाओं को अपनी पारिवारिक आय बढ़ाने में मदद की जिसके परिणामस्वरूप उनके परिवार की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। युवा अनुसूचित जाति की आबादी को उद्यमी अवसर खोलने के लिए टोंक, जिले के करीब 30 बेरोजगार युवाओं ने मशीन द्वारा ऊन बाल काटने पर 10 दिवसीय कौशल विकास प्रशिक्षण के लिए चयन किया था। इन युवाओं को आयातित और स्वदेश में विकसित बाल काटने की मशीन पर प्रशिक्षण दिया गया। प्रोजेक्ट के तहत इन युवाओं के एक स्वयं सहायता समूह को बाल काटने की मशीन उपलब्ध कराई जाएगी। सेल्फ ग्रुप द्वारा मशीन कतरनी की एडवांस तकनीक पर स्टार्ट–अप बनाया जाएगा, जिससे युवाओं को स्वरोजगार के अवसर पैदा होंगे। इसके अलावा पांच ''किसान – वैज्ञानिक संगोष्ठी'' का आयोजन किया गया, जिसमें 750 किसानों/कारीगरों ने भाग लिया। कोविड–19 के दौरान अनुसूचित जाति परियोजना के अन्तर्गत 30 किसान/महिलाओं को एक नर व 2 मादा मालपुरा नस्ल के उनके जीवनयापन को सरल बनाने के लिए वितरण किये गये। इन किसानों को भेड़ों के आवास के लिए (4x12ft) के 4 प्रोफाइल शीट एवं (20ft) लम्बे 4 पोल भी वितरित किये गये। कोरोना वायरस से बचाव के लिए फेश मास्क बनाने हेतु महिलाओं के लिए 5 दिवसीय प्रशिक्षण आयोजित किया जा रहा है। प्रशिक्षण के उपरान्त इनको सिलाई मशीन भी उपलब्ध कराई गई है। इस दौरान लगभग 3000 फेश मास्क निर्मित किये गये हैं। जिन्हें परियोजना के अन्तर्गत लाभार्थियों को वितरित किया जा रहा है।

संस्थान का इस योजना के माध्यम से गरीब परिवारों, विधवाओं एवं विकलांगों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार कर उनको गरीबी रेखा से ऊपर लाना मुख्य उद्देश्य है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्थान उपरोक्त विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से प्रयास कर रहा है।

कार्यक्रम का क्रियान्वयन व लाभार्थी चयन के मापदण्ड

अनुसूचित जाति उप योजना सेल की गतिविधियाँ संस्थान के निदेशक द्वारा नामित नोडल अधिकारी एवं इसके सदस्यों द्वारा संचालित की जाती है। संस्थान को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली द्वारा धनराशि आवंटन की जाती है। आवंटित राशि को अनुसूचित जाति के परिवारों को प्रशिक्षण, तकनीकी व कृषि सम्बन्धी सामान व ऊन से निर्मित

उत्पादों पर प्रशिक्षण एवं इससे सम्बन्धित सामान का वितरण संस्थान में उक्त कार्यक्रम को चलाने हेतु आधारभूत सुविधाओं का निर्माण आदि के लिए विभिन्न मदों हेतु परियोजना के नोडल अधिकारी व इसके सदस्यों द्वारा सुविचारित कार्य योजना प्रस्तुत की जाती है। कार्ययोजना सक्षम अधिकारी द्वारा अनुमोदन के उपरान्त विभिन्न विभागों/अनुभागों से विभिन्न गतिविधियों हेतु प्रस्ताव आमन्त्रित किये जाते हैं। विभिन्न विभागों/अनुभागों/उपकेन्द्रों से प्राप्त प्रस्तावों पर नोडल अधिकारी की अध्यक्षता में समस्त सदस्यों द्वारा प्रस्तावों की प्रशासनिक स्वीकृति प्राप्त होने के उपरान्त वित्तीय स्वीकृति हेतु लेखा अनुभाग के माध्यम से प्रस्ताव हेतु वित्तीय स्वीकृति जारी की जाती है। इसके उपरान्त योजना पर विभाग/अनुभाग/केन्द्र के प्रभारी द्वारा क्रियान्वित की जाती है। विभागों/अनुभागों/केन्द्रों द्वारा लाभार्थियों का चयन क्षेत्र का सर्वेक्षण या समाचार–पत्र पर दिये गये विज्ञापन के आधार पर किया जाता है। सर्वेक्षण या विज्ञापन के माध्यम से चयन के दौरान भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्/भारत सरकार द्वारा जारी किये गये दिशा–निर्देशों का पालन किया जाता है। कार्यक्रम में शामिल किये जाने वाले लाभार्थियों का आधार कार्ड/जाति प्रमाण–पत्र की जाँच अवश्य की जाती है। परियोजना में विधवा, गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों, महिलाओं, विकलांगों को विशेष लाभ दिया जाता है। परियोजना में ऐसे क्षेत्र/गाँव जिनमें अनुसूचित जाति के परिवारों की संख्या 50 प्रतिशत से ज्यादा हो उन्हें प्राथमिकता के आधार पर चयन किया जाता है।

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्त्रोत है।

सुमित्रानंदन पंत

'अनुसूचित जनजाति उपयोजना के अंतर्गत बकरी एवं खरगोश पालन ईकाई का वितरण'

अमर सिंह मीना, रतन लाल बैरवा, लीला राम गुर्जर, दुष्यंत कुमार शर्मा, गणेश सोनावणे एवं अरुण कुमार

केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, के माध्यम से टीएसपी योजना के अन्तर्गत दक्षिणी राजस्थान के आर्थिक रुप से कमजोर परिवारों/लाभार्थियों को भेड़, बकरी, एवं खरगोश पालन ईकाई का वितरण विगत कई वर्षों से डूँगरपुर जिले की विभिन्न तहसीलों के गाँवों में किया जा रहा है। भारत सरकार प्रतिवर्ष अनुसूचित जनजाति उपयोजना में करोड़ों रूपये का बजट खेती एवं पशुपालन आधारित व्यवसाय को बढ़ाने के लिये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली को देती है। अनुसूचित जनजाति उपयोजना को संक्षेप में टीएसपी (ट्राईबल सब प्लान) के नाम से भी जाना जाता है। भारत सरकार द्वारा सभी वर्गों के किसानों की आय 2022 तक दुगुनी करने के लिये देश के सभी धर्मों/समुदायों/जातियों की आर्थिक मदद करने के लिये कई योजनाएँ जारी हैं। जिसमें फार्मर फस्ट, अनुसूचित जाति उप योजना (एससीएसपी) एवं टीएसपी (ट्राईबल सब प्लान) आदि शामिल हैं। इनके द्वारा खेती, पशुपालन एवं उनसे संबंधित मूल्य आधारित उत्पादों के निर्माण के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रशिक्षण, खेती तथा पशुपालन के जर्मप्लाज्म का वितरण, उनके लिये आवश्यक सामानों का वितरण, वैज्ञानिक पद्धति से व्यवसाय के बारे में जागरुकता एवं सलाह किसानों को उनके द्वार (गाँवो में) पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संस्थानो द्वारा पहुँचाई जा रही है। इस लेख में संस्थान के द्वारा टीएसपी योजना के माध्यम से डूँगरपुर जिले के आदिवासी किसानों को आत्मनिर्भर बनाने के लिये बकरी एवं खरगोश पालन ईकाई के वितरण के बारे में बताया गया है।

डूँगररपुर जिले के क्षेत्र का सर्वे एवं चयन टीएसपी योजना के माध्यम से संस्थान के वैज्ञानिकों एवं तकनीकी सहायकों द्वारा डूँगरपुर जिले की विभिन्न तहसीलों के गाँवों में बकरी तथा खरगोश पालन के लिये सर्वे किया जाता है। डूँगरपुर जिले की पथरीली जमीन, खेती के लिए पानी का अभाव, वहाँ की जमीन पथरीली होने के कारण पेड़ पौधों के विकास एवं फैलाव में कमी, बहुत ही कम या नगण्य खेती योग्य जमीन तथा विभिन्न प्राकृतिक एवं आकस्मिक घटनाओं के कारण बहुत से आदिवासी किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। साथ ही गाँवो के लोगो में स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवार नियोजन कार्यक्रम में कम भागीदारी लोगों को वहाँ पर उपस्थित संसाधनों के हिसाब से आजीविका चलाने के लिए स्थानीय रोजगार की बहुत ही कमी है। जिससे ज्यादातर डूँगरपुर जिले की युवा आबादी मजदूर के रुप में पड़ोसी राज्य गुजरात में पलायन को मजबूर है। टीएसपी योजना के माध्यम से 40 वर्ष से कम आयु की विधवा, विकलांग महिला, बीपीएल, अन्त्योदय आदि महिला या पुरुष आदिवासी किसान को टीएसपी योजना में लाभार्थी के रुप में चयन किया जाता है। डूँगरपुर जिले के चयनित पशुपालक महिला एवं पुरुष आदिवासी किसानों का वैज्ञानिक पद्वति से बकरी एवं खरगोश पालन के लिये आवश्यक पशु सामान दाना आदि टीएसपी योजना के माध्यम से निशुल्क हमारे संस्थान द्वारा वितरण किया जाता है।

टीएसपी योजना के माध्यम से डूँगरपुर जिले के आदिवासी किसानों को बकरी एवं खरगोश पालन ईकाई का वितरण" केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर के द्वारा संचालित टीएसपी योजना में डूँगरपुर जिले में 25 फरवरी एवं 17 मार्च, 2021 को खरगोश ईकाई एवं सिरोही नस्ल की बकरियों एवं उन्नत नस्ल के बकरों का वितरण 25 चयनित आदिवासी महिला एवं पुरुष किसानों को संगोष्ठी कार्यक्रम में निदेशक महोदय एवं उपस्थित अतिथियों द्वारा

निशुल्क वितरण किया गया। 25 फरवरी, 2021 को संस्थान के विभिन्न नस्लों की उत्तम खरगोश ईकाई (4+1) तथा खरगोश पिंजरे, पैलेट फीड, तसला, टॉर्च, छाता, पानी की बोतल, संस्थान का पशु कैलेन्डर आदि का वितरण चयनित 25 आदिवासी किसानों को निशुल्क किया गया। साथ ही खरगोश पालन के लिये आवश्यक सुझाव एवं सलाह निदेशक महोदय द्वारा कार्यक्रम में विस्तृत रुप से दी गई। संस्थान के पशुचिकित्सकों द्वारा खरगोश पालन संबंधी बीमारियों एवं प्रबंधन पर विस्तृत चर्चा आदिवासी किसानों के साथ की गयी। खरगोश के प्रजनन प्रबंधन, चारा एवं दाना, आवास आदि के बारे में विस्तार से कार्यक्रम में जानकारी दी। खरगोश पालन करके आदिवासी किसान अपनी आजीविका घर पर बैठे ही अर्जित कर सकें, इसलिए आदिवासी किसानों की इच्छाशक्ति के अनुरुप उनको खरगोश ईकाई के वितरण के लिए चुना। आगामी समय में संस्थान द्वारा खरगोश पालक किसानों को 3–5 दिवसीय आवासीय प्रशिक्षण कार्यक्रम भी संस्थान परिसर में निशुल्क दिया जायेगा। जिससे प्रशिक्षण कार्यक्रम में दोनों ओर से संवाद के द्वारा उनकी खरगोश पालन की समस्या एवं ज्ञान को बढ़ाया जा सके। इसी तरह 17 मार्च, 2021 को भी संस्थान के किसान संगोष्ठी एवं प्रदर्शनी कार्यक्रम में सिरोही नस्ल की बकरियाँ (125 बकरी), बकरे (20 ब्रीडिंग बकरों) का वितरण डूँगरपुर जिले के चयनित पशुपालक आदिवासी किसानों को (5+1) सिरोही नस्ल की ईकाई, साथ में फीडिंग ट्रफ, बकरी पैलेट फीड़, तसला, टॉर्च, छाता एवं संस्थान का भेड़, बकरी पालन कैलेन्डर का भी कार्यक्रम में निशुल्क वितरण किया गया। संस्थान निदेशक ने भी सिरोही बकरी पालन पर विस्तृत रुप में हिन्दी में जानकारी आदिवासी किसान भाईयों को दी। साथ में बकरी पालन के चारा प्रबंधन, पशु स्वास्थ्य एवं प्रजनन विषय पर भी जागरुकता एवं वैज्ञानिक सलाह कार्यक्रम में उपस्थित वैज्ञानिकों एवं पशु चिकित्सकों ने दी। संस्थान की टीएसपी योजना के टीम सदस्यों द्वारा भी समय–समय पर पशु स्वास्थ्य शिविर, रात्रि चौपालों, किसान गोष्ठी, प्रदर्शनी एवं किसान के द्वार पर बकरी पालन की आने वाली समस्या एवं उसका उपचार किया गया। संस्थान विगत सात वर्षो में जिले के विभिन्न गाँवो के चयनित पशुपालकों को भेड़, बकरी, बीजू बकरे, मेंढे एवं खरगोश का निशुल्क वितरण किया जा रहा है जिससे की आदिवासी जनजाति लोगों की सोच, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय को मजबूत कर उनकी आमदनी में बढोतरी हो। इससे आदिवासी किसान आत्मनिर्भर बने तथा शहरों की तरफ पलायन रोका जा सके। संस्थान राज्य सरकार की संस्थाओं, कृषि अनुसंधान केन्द्र एवं अपनी टीएसपी योजनाओं की टीम के सहयोग से आदिवासी किसानों को आधुनिक कर सकने मे सक्षम बना रहे हैं। भविष्य में डूँगरपुर जिले के आदिवासी बकरी एवं खरगोश पालक किसानों को भी प्रशिक्षण देकर उनके ज्ञान में वृद्धि की जा सकेगी। डूँगरपुर जिले में सिरोही नस्ल की बकरियाँ एवं बकरे तथा खरगोश पालन से आदिवासी जनजाति किसानों की दैनिक आवश्यकता जैसे दूध एवं किसी भी माँस तथा प्रजनन से प्राप्त बच्चों को बेचकर पैसे प्राप्त किये जा सकते हैं। जिससे डूँगरपुर जिले की आर्थिक रूप से कमजोर परिवार अपनी आजीविका चलाने में आत्मनिर्भर एवं सक्षम हो सके। डूँगरपुर जिले की पथरीली जमीन में कम खेती योग्य जमीन के बावजूद भी आदिवासी किसानों को अपने क्षेत्र में पशुपालन के माध्यम से रोजगार दिलाया जा सके। इससे गाँवों में कम पढे–लिखे आदिवासी महिलाओं, पुरुषों एवं युवाओं का पलायन रोजगार के लिये शहरों की तरफ कम किया जा सके। भेड़–पालन, सिरोही नस्ल की बकरी पालन एवं खरगोश पालन से डूँगरपुर जिले के जनजाति किसानों की आय को सुदृढ़ करने के लिये उनके अपने पशुपालन के ज्ञान को बढावा देने एवं वैज्ञानिक पद्वति से पशुपालन के लिये प्रेरित करने के लिये टीएसपी योजना के माध्यम से संस्थान विभिन्न गतिविधियों का सालभर में किसानों के दरवाजे पर (गाँवो में) आयोजित करता आ रहा है।

सारांश

टीएसपी योजना के अन्तर्गत संस्थान द्वारा सिरोही नस्ल की बकरियों एवं बकरे का वितरण डूँगरपुर जिले के आदिवासी किसानों की आमदनी बढ़ाने में सहायक सिद्व होगा। इसी प्रकार बहुत कम संसाधन में आदिवासी किसान खरगोश पालन करके उन्हें किसी भी समय बेच कर अपनी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। टीएसपी योजना के माध्यम

से संस्थान डूँगरपुर जिले में विगत सात सालों में बहुत कार्य भेड़, बकरी एवं खरगोश पालन में किया है। अब आदिवासी जनजाति किसानों की सोच एवं मेहनत पर निर्भर करता है कि वो योजना द्वारा दी गई जानकारी एवं जर्मप्लाज्म से अपनी आजीविका कमाने में सक्षम हों। डूँगरपुर जिले के प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर वहाँ पर व्यापक स्तर पर भेड़ एवं बकरी पालन कठिन है क्योकिं वहाँ की जमीन का ऊपर से ही पत्थरीली होना खेती एवं पशुपालन के ज्यादा विकास में बाधक है। फिर भी यदि आदिवासी जनजाति किसानों की एकजुटता, सूखे एवं हरे चारे के प्रबंध से छोटे–छोटे भेड़ एवं बकरी के रेवड़ से आजीविका कमाई जा सकती है। संस्थान आदिवासी जनजाति किसानों को वहाँ पर उपलब्ध संसाधनों के उपयोग से भेड़, बकरी एवं खरगोश पालन संगोष्ठी, रात्रि चौपालों, पशु स्वास्थ्य शिविरों आदि का आयोजन भविष्य में भी करता रहेगा।

खरगोश पालन इकाई का डूँगरपुर जिले के आदिवासी जनजाति किसानों को वितरण एवं संस्थान द्वारा समय–समय पर भ्रमण कर वैज्ञानिक सलाह से पालन पर जागरुक करना।

कोविड-19 से बचाव हेतु ''फेस मास्क'' बनाने पर प्रशिक्षण

डी0 बी0 शाक्यवार, परवेश कुमार एवं राजेन्द्र कुमार माछुपूरिया

स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, मानव के आरामदायक जीवन एवं कार्य हेतु प्राथमिक आवश्यकता है। मनुष्य को विभिन्न तरह के जीवाणुओं के संक्रमण से रोकने के लिए विभिन्न प्रकार की सावधानियाँ रखनी होती हैं। इनसे बचने के लिए सदियों से मनुष्य पेड़–पौधों की पत्तियों, छालों तथा तेल से उपचार प्रयोग में लाता रहा है। नीम की पत्तियों, छाल व निमोड़ी से निकले तेल को प्राचीन काल से उपयोग किया जा रहा है। आधुनिक विश्व में नयी दवाईयों के प्रयोग से पेड़ व पौधों से उपचार पद्वति का महत्व कम हुआ है लेकिन दवाईयों के दुष्प्रभाव के कारण भविष्य में प्राकृतिक उपचार का पुनः महत्व बढ़ रहा है।

वर्तमान समय में कोविड–19 के विश्व में विकराल संक्रमण के चलते हर व्यक्ति को नये तरीके से जीने के लिए मजबूर कर दिया है। कोविड–19 के सक्रमण से बचाव के उपाय के रूप में भारत सरकार द्वारा चेहरा ढ़कने के लिए ''फेस मास्क'' लगाना आवश्यक किया गया है। फेस मास्क से कोरोना वायरस से काफी हद तक बचाव किया जा सकता है। फेस मास्क कई तरह के होते हैं। इनमें कुछ मास्क डॉक्टर व नर्स के लिए होते हैं। आम आदमी के लिए सूती कपड़े का मास्क ही ठीक समझा जाता है। इस प्रकार के ''फेस मास्क'' को आसानी से उपयोग किया जा सकता है। इस मास्क को धोकर पुनः उपयोग में लिया जा सकता है जबकि अन्य मास्क एक बार ही उपयोग कर सकते हैं।

इसी को देखते हुए कपड़े से बनाये जाने वाले फेस मास्क को बनाने का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इस प्रशिक्षण के अन्दर कपड़े से बनाये जाने वाले फेस मास्क हेतु कपड़े का चयन, बनाने की प्रक्रिया, सावधानियाँ एवं इसको औषधीय मास्क के रूप में परिवर्तन के लिए विभिन्न औषधीय पौधों की पत्तियों या छाल के उरक से उपचारित किया जा सकता है। फेस मास्क को बनाने के लिए सूती कपड़े का उपयोग अच्छा माना गया है क्योंकि सूती मास्क चेहरे को उपयोग के दौरान आराम दायक होते हैं। मास्क में उपयोग आने वाले कपड़े का वजन 90–100 ग्राम/मी.^{2} होना चाहियें। कपड़े का वजन धागे की मोटाई पर निर्भर करता है। यदि कपड़े का वजन कम है तो मास्क को दो परतों में बना होना चाहिये। संक्रमण के बचाव हेतु दो परतों वाला मास्क बहुत अच्छा माना जाता है। सामान्यतया मास्क की लम्बाई 8'' इंच तथा चौड़ाई 4'' इंच से कम नही होनी चाहिये। जिससे मुँह एवं नाक अच्छी तरह से ढ़क सके। फेस मास्क को घर पर बनाने के लिए सूती कपड़ा, सिलाई मशीन, धागे, इलास्टिक बैन्ड आदि की आवश्यकता होती है। कपड़े का आकार 20 सेमी. लम्बा व 15 सेमी. चौड़ा कपड़ा काटते हैं। अगर दो परतों वाला मास्क बनाना होता है तो 20 सेमी. X 15 सेमी. के दो टुकड़े लेकर चारों तरफ सिलाई कर लेते हैं। उसके उपरान्त सिले टुकड़ों की चौड़ाई वाले किनारे पर चार फोल्ड डाल देते हैं। उसके उपरान्त चारों कोनों पर 20 सेमी. लम्बी बारीक पट्टियों को सिलाई कर जोड़ देते हैं। इस प्रकार बने फेस मास्क को ऊपर दी गई तकनीक से नीम की पत्तियाँ हल्दी या अनार के छिलके के अरक से उपचारित कर सुखा लेते हैं। इस प्रकार बना प्राकृतिक उपचारित औषधीय फेस मास्क ज्यादा सुरक्षित, सस्ता एवं टिकाऊ पाया गया है।

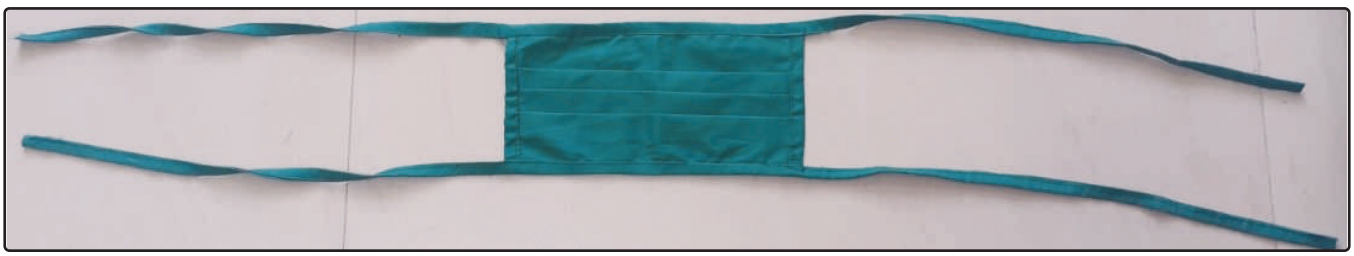

चित्र – सूती कपड़े का फेस मास्क

वर्तमान परिस्थिति में कोरोना वायरस के संक्रमण को रोकने के लिए कपड़े से निर्मित फेस मास्क को अनिवार्य करने के परिणामस्वरूप कपड़े से निर्मित फेस मास्क की उपयोगिता बढ़ाने के लिए नीम की पत्तियों के अर्क से उपचारित कर वातावरण में फैले विषाणु से बचाव किया जा सकता है। 20 ग्राम सूखी नीम की पत्तियों को बारीक पाउडर में पीस लेते हैं। इस प्रकार पाउडर को 100 ग्राम पानी में 15 मिनट तक उबाल कर छान लेते हैं। इसके उपरान्त 8 प्रतिशत नींबू के रस को घोल में मिलाने के उपरान्त उस विलयन में कपड़े को 30 मिनट तक डुबो कर रखते हैं। इस दौरान हल्का गर्म करते हैं। इसके उपरान्त निचोड़ कर छाया में सुखा लेते हैं। इस प्रकार निर्मित फेस मास्क बैक्टेरिया के प्रतिरोधी पाये जाते हैं। इनको 5 बार तक धोने के उपरान्त भी बैक्टेरिया प्रतिरोधी कार्य करते हैं। इस प्रकार से निर्मित नीम से उपचारित फेस मास्क वैश्विक बीमारी के बचाव में काफी अहम भूमिका अदा कर सकते हैं। इसके अलावा हल्दी एवं अनार के छिलकों के पाउडर को भी पानी में उबालने के बाद छानकर सूती फेस मास्क को उपचारित किया जा सकता है।

कपड़े से निर्मित फेस मास्क की अच्छाईयाँ एवं कमियाँ

कपड़े से निर्मित फेस मास्क की कुछ कमियाँ भी होती हैं। इस प्रकार के फेस मास्क 20–30 प्रतिशत ही सुरक्षा प्रदान करते हैं। इस प्रकार के फेस मास्क मनुष्य द्वारा छींकने व खाँसी के दौरान निकलने वाली पानी की बूदों को रोकने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार सामने वाले व्यक्ति को संक्रमण से बचाव करने में मदद मिलती है। अतः यह खतरा बना रहता है कि संक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर संक्रमण हो सकता है। इसको पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं मान सकते हैं। इस प्रकार के फेस मास्क की कुछ अच्छाईयाँ भी होती हैं। कपड़े से निर्मित फेस मास्क सस्ते भी होते हैं जबकि N- 95 या अन्य मास्क मंहगें होते हैं। इस प्रकार के मास्क को ज्यादा समय तक बिना हटाये लगाया जा सकता है। इन्हें धोने के उपरान्त पुनः प्रयोग में लाया जा सकता है। जबकि डिस्पोजेबल मास्क को एक बार ही उपयोग कर नष्ट किया जाता है।

हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और उसे दृढ़ करती है।

पुरूषोत्तम दास टंडन

स्वच्छ और सुरक्षित दूध उत्पादन का महत्व

बरखा शर्मा, रामधन घसवा

हमारे देश के ज्यादातर किसान पशु पालन से जुड़े हुए हैं, ग्रामीण क्षेत्रों के लगभग प्रत्येक परिवार में पशुपालन होता है । ग्रामीण जनसँख्या दूध प्राप्त करने के लिए बकरी, गाय, भैंस आदि पशु पालते हैं। स्वच्छ दूध उत्पादन का सीधा सम्बन्ध आर्थिक लाभ से होता है। यदि दूध को सावधानीपूर्वक एवं स्वच्छ विधि द्वारा न निकाला जाये तो यह अत्यंत हानिकारक हो जाता है। जिसके सेवन से मानव शरीर में विभिन्न प्रकार की बीमारियों के होने की संभावना ज्यादा हो जाती है ।

दूध दोहन एक कला है। दूध दुहने का सही तरीका और दुग्ध रखने की समुचित विधि की जानकारी परिवार के प्रत्येक सदस्य को भली–भांति होना चाहिए। दूध दोहने का समय उपभोक्ता की आवश्यकता के अनुसार निश्चित कर लेना चहिये । एक बार दोहन का समय निश्चित हो जाये तो उसी समय दुग्ध दोहन की क्रिया प्रतिदिन करनी चाहिए । समय में परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

दूध में प्रायः दो प्रकार की गंदगी समाहित होती है। एक वह जो आँखों से दिखाई दे तथा दूसरी वह जो कि आँखों से दिखाई नहीं देती है। दूध में समायोजित होने वाली गंदगी को पूर्ण रूप से रोकना असंभव है । परन्तु कृषक, कृषक महिलाएं (पशुपालक) यदि थोड़ी सी सावधानी बरतें तथा निम्न पहलुओं का ध्यान रखें तो काफी हद तक दूध में मिश्रित होने वाली गंदगी से बचाव कर स्वच्छ दूध उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

दूध दूषित होने के संभावित स्त्रोत

दूध दूषित होने के मुख्यतः दो प्रमुख स्त्रोत हैं –

जानवरों के अयन से – थनों के अंदर पाए जाने वाले जीवाणु ।

बाहरी वातावरण से –

1. जानवर के बाहरी शरीर से
2. जानवर बांधने के स्थान से
3. दूध के बर्तनों से
4. दूध दुहने वाले ग्वाले से
5. अन्य साधनों से मच्छर, मक्खियों, गोबर व धूल के कणों, बालों आदि से ।

स्वच्छ दूध किसे कहते हैं

पशुपालकों को चाहिए कि दूध निकालते समय सफाई का विशेष ध्यान रखें तभी स्वच्छ दूध उत्पादन किया जा सकता है। स्वच्छ दूध का अर्थ दूध में हानिकारक जीवाणु, धूल के कण, गोबर, मिटटी, कचरा, सूखा चारा, किसी भी प्रकार के रसायन आदि से रहित हो। साफ तथा स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए कई कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जैसे कि स्वच्छ वातावरण, स्वच्छ पशुशाला, पशु स्वास्थ्य, दूधशाला की साफ–सफाई, दूध उत्पादन में उपयोग होने वाले बर्तन, दूध दुहने वाले का स्वास्थ्य एवं दूध दुहने का सही तरीका इत्यादि। स्वच्छ दूध उत्पादन में ऐसे सुरक्षित उपायों को अपनाया जाता है

जो जानवरों के स्वास्थ्य को नुकसान न पहुचायें और दुधारू पशुओं को थनैला जैसी बीमारियों से बचाने में सहायक हों। प्रत्येक पशु से बिना उसकी उत्पादकता को प्रभावित किये उचित रखरखाव और देखभाल के द्वारा श्रेष्ठ गुणवत्ता युक्त दूध प्राप्त करना तभी संभव हो सकता है जब दूध को साफ एवं बीमारी रहित दुधारू पशुओं से, स्वच्छ वातावरण में एवं जीवाणु रहित बर्तन में, स्वच्छ एवं साफ सुथरे ग्वालों द्वारा निकाला गया हो। हानिकारक सूक्ष्म जीवाणुओं की उपस्थिति भी कम से कम संख्या में हो ताकि दूध जल्दी खराब हो। कई बार अनजाने तो कई बार जान बूझ कर भी दूध में ऐसे तत्व मिला दिए जाते हैं जिससे यह संक्रमित और हानिकारक हो जाता है।

पशु की सफाई

स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए पशु की स्वच्छता भी बहुत आवश्यक है । दोहन का कार्य करने से एक घंटा पूर्व पशु की सफाई करनी चाहिए। स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए दुधारू पशु की सफाई बहुत महत्वपूर्ण है। पशु के शरीर की अच्छी तरह सफाई करनी चाहिए क्योंकि पशु के द्वारा भी दूध में गंदगी आदि आ सकती है। पशु के शरीर पर लगी मिट्टी आदि को अच्छी तरह साफ करना भी आवश्यक है । खास–तौर से पशु के शरीर के पीछे के हिस्से, पेट, अयन, पूंछ व पेट के निचले हिस्से की विशेष सफाई करनी चाहिए। दूध दोहन से पहले पशु के अयन को साफ पानी से अच्छी तरह धोयें फिर उसे एक साफ कपडे से पोंछ ले। फिर किसी कीटाणुनाशक घोल से धोकर पोंछ दे। दोहन के समय पशु के अयन व थन सूखे होने चाहियें।

दूध शाला की सफाई

दूधशाला की साफ–सफाई भी अति आवश्यक है। पशुओं को साफ एवं सूखी जगह पर रखना चाहिए और दूध निकालते समय पूरी सतर्कता बरती जानी चाहिए। जहां तक संभव हो सके पशु को बांधने वाली जगह की फर्श या तो पक्की होनी चाहिए या फिर कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि गोबर या मूत्र आसानी से बह कर साफ हो जाये । बाड़े की दीवारें, छत आदि भी साफ होनी चाहिए और दीवारों पर सफेदी हो, जाले–धूल आदि गंदगी न हो, बदबू ना आ रही हो, जीवाणुनाशक घोल का छिड़काव किया हो, हवा का आवागमन हो तथा दूधशाला प्रकाशमय होनी चाहिए।

दूध दुहने वाले व्यक्ति की सफाई

पशु के साथ–साथ स्वच्छ दूध उत्पादन लेने के लिए ग्वाले की सफाई भी अति आवश्यक है। ग्वाले के हाथों के नाखून कटे हो, हाथ साफ हो, साफ कपडे पहने हो, सर ढका हो, ग्वाले दूध दुहते समय बात करना, धूम्रपान करना, तम्बाकू या गुटका खाकर थूकना, खाँसना आदि ना करें।

दूध दोहन का तरीका

पूर्ण मुट्ठी (पूर्ण हस्त) विधि के द्वारा दूध का दोहन करना चाहिए। दोहन की इस विधि से पशु के थन सुरक्षित रहते हैं एवं पशु को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है।

दूध के बर्तन की सफाई

दूध दुहने का बर्तन साफ होना चाहिए। उसकी सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। दूध के बर्तन को पहले ठंडे पानी से, फिर सोडा या अन्य जीवाणु नाशक रसायन से मिले गर्म पानी से, फिर सादे गर्म पानी से धोकर धूप में उल्टा रख कर सूखा लेना चाहिए। साफ किये हुए बर्तन पर मच्छर, मक्खियों को नहीं बैठने देना चाहिए। दूध दुहने का बर्तन स्टेनलेस

स्टील या गेल्वेनाइज्ड लोहे का बना हो, उसमें जंग न लगे। दूध निकालने वाले बर्तन इस तरह के होने चाहिए जिसमें कहीं भी दूध के अवशेष इक्टठा न हों और उसकी सफाई सहज ढंग से हो सके। जहां तक हो सके दूध दुहने वाले बर्तनो का मुँह संकरा हो ताकि उसमें बाल, मिटटी, धूल, गोबर, घास– फूस तिनके आदि न गिर सके।

अधिक दूध उत्पादन के लिए ध्यान रखने योग्य बातें

- पशु के पीने का, बर्तन धोने का पानी स्वच्छ होना चाहिए नहीं तो पशु को रोग होने की सम्भावना रहती है ।
- पशु को नियमित हरा चारा एवं दाना दें तथा दूध दोहने के एक घंटा पूर्व जो भी खिलाना है, खिला दें।
- कभी भी दूध दोहन के समय चारा ना खिलायें अन्यथा हवा द्वारा चारे के कण उड़कर दूध में मिल सकते हैं । दुधारू पशु को कभी भी तेज गंधयुक्त चारा ना खिलायें अन्यथा चारे की गंध भी दूध में मिल सकती है।
- प्रायः पशु के पैरों को रस्सी से बांधकर दूध निकाला जाता है । रस्सी के बार–बार प्रयोग से रस्सी में गोबर, दूध के छींटे आदि लगने से प्रायः गन्दी हो जाती है। अतः रस्सी को भी रोजाना जीवाणुनाशक घोल से धोकर तेज धूप में सुखाया जाता है ।
- दूध दोहने की क्रिया शीघ्र करनी चाहिए क्योंकि ऑक्सीटोसिन हार्मोन का असर मात्र 7 मिनिट तक ही रहता है। अतः शीघ्र दोहन करने से ही दूध की पूर्ण मात्रा मिल पायेगी अन्यथा यदि पशु दूध ज्यादा देता है और दूध दोहन कार्य धीमा रहता है तो ज्यादा समय लगने से हार्मोन का असर समाप्त हो जायेगा और दूध पूरा नहीं मिल पायेगा इसलिए दूध दुहने की क्रिया जल्दी से कर लेनी चाहिए। हमेशा वह व्यक्ति दूध निकाले जो इस कार्य में निपुर्ण हो।
- दोहन प्रकिया को लगातार रखा जाये। बीच में रोकने से ना केवल समय अधिक लगता है अपितु दूध के मात्रा भी घटती है।
- यदि दुधारू पशु को दो बार दुहा जाता है तो प्रति 12 घंटो के अंतराल से और यदि तीन बार दुहा जाये तो प्रति 8 घंटो के अंतर पर दोहन किया जाना चाहिए।
- अच्छा दूध उत्पादन लेने के लिए यह जरुरी है कि दोहन गति आरम्भ से लेकर अंतिम समय तक एक जैसी ही रहे, नहीं तो इसका असर दूध के उत्पादन पर भी पड़ सकता है।
- प्रतिदिन नियमित समय पर दोहन किया जाये ताकि अधिक दूध उत्पादन लिया जा सके।
- दूध दोहने के समय ये ध्यान रखा जाये कि पूर्ण दूध का दोहन हो सके नहीं तो थनो में दूध रह जाने से पशुओं को अन्य समस्या उत्पन्न हो जाती हैं।
- दूध दोहते समय थनों पर पानी, तेल या दूध के झाग को ना लगाया जाये अन्यथा थनों के फटने का डर रहता है और थनैला रोग भी होने की सम्भावना रहती है।
- दूध दोहने की क्रिया शांत वातावरण में होनी चाहिए क्योंकि अचानक तेज आवाज से पशु विचलित हो जाता है तथा दूध का स्त्राव कम हो जाता है। जिसके कारण दूध कम मिलता है।
- सुचारु रूप से नियत अंतराल पर पशुओं के स्वास्थ्य की जाँच कराई जानी चाहिए। स्वस्थ पशुओं से ही स्वच्छ दूध

प्राप्त किया जा सकता है। अतः यह आवश्यक है की दुधारू पशु थनैला, क्षय रोग, रेबीज, आदि जैसी बीमारियों से मुक्त हों।

- नियत समय पर पशुओ का टीकाकरण करवाना भी आवश्यक है । बीमार पशुओ में रुग्णावस्था के दौरान एवं एंटीबायोटिक जैसी दवाओं और टीकाकरण के प्रयोग के बाद संस्तुत समय तक दूध का प्रयोग अथवा संग्रह मानव उपभोग के लिए नहीं करना चाहिए।
- दूध दुहने के तुरंत पश्चात् दूध को पशुशाला से हटाकर स्वच्छ स्थान पर रख देना चाहिए।
- यदि दूध गर्म करने में समय लगे तो दूध को ठंडे स्थान पर भण्डारण करना चाहिए ।

स्वच्छ दूध उत्पादन के माध्यम से उच्च गुणवत्तायुक्त दूध उपलब्ध कराकर मानव स्वास्थ्य और पोषण को भी सुनिश्चित किया जा सकता है। इतना ही नहीं, गुणवत्तायुक्त होने के कारण ऐसा दूध बाजारो में भी अच्छी कीमत पर बिकता है जिससे किसानों को आर्थिक लाभ मिलता है।

भारतीय सभ्यता की अविरल धारा प्रमुख रूप से हिंदी भाषा से
ही जीवंत तथा सुरक्षित रह पाई है।

अमित शाह (गृह मंत्री)

स्वच्छ मांस उत्पादन

वाई पी गाडेकर, अरविन्द सोनी एवं ए के शिंदे

मांस मानव आहार का महत्वपूर्ण घटक है। मांस प्रोटीन, वसीय अम्ल, खनिज और विटामिन का बहुत अच्छा स्रोत है जो मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। अस्वाभाविक तरीके से और रोगग्रस्त पशुओं से प्राप्त मांस एवं अनुचित तरीके से पकाया मांस के जरिये मनुष्यों में रोग का संचरण हो सकता है। उपभोक्ताओं को पौष्टिक मांस प्रदान करने के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में मांस निरीक्षण अधिनियम (1906) पारित किया गया था। इस कानून के तहत यूनाइटेड स्टेट्स एग्रीकल्चर डिपार्टमेंट (यूएसडीए) द्वारा सभी मांस हेतु जानवरों का वध पूर्व और वध पश्चात निरीक्षण अनिवार्य किया। यूएसडीए के मांस निरीक्षण सेवा को खाद्य सुरक्षा और निरीक्षण सेवा (FSIS) कहा जाता है। खाद्य जनित और पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग आम तौर पर महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है। पशुओं का परीक्षण पशु स्वास्थ्य महत्व के निर्दिष्ट रोगों के निगरानी में महत्वपूर्ण है। स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर मांस और मांस उत्पादों में तेजी से बढ़ते व्यापार के परिणामस्वरूप जैव सुरक्षा और खाद्य श्रृंखला के माध्यम से पशुओं के रोगों के संचरण की क्षमता में वृद्धि हुई है। वध पश्चात लोथ परीक्षण, मांस निरीक्षक द्वारा पर्याप्त प्रकाश में वध के बाद लोथ और आंतरिक अंगों का व्यवस्थित, विस्तृत और पूर्ण परीक्षण है, जिसका उद्देश्य उपभोक्ताओं को एक पौष्टिक और रोग मुक्त मांस प्रदान करना है।

पोस्टमार्टम निरीक्षण के उद्देश्य (PMI)

1. उपभोक्ताओं के लिए रोग मुक्त और पौष्टिक मांस प्रदान करना
2. असामान्य स्थितियों की पहचान करना और दूषित मांस को बाहर कर दूषित पदार्थों को रोकना
3. मानव भोजन के लिए केवल उचित मांस सुनिश्चित करने के लिए
4. वध और शव ड्रेसिंग की दक्षता की जांच करने के लिए
5. वधशाला में काम करने वाले लोगों को संचारी रोगों से बचाने के लिए
6. महत्वपूर्ण बीमारियों (खुरपका–मुँहपका बीमारी, एंथ्रेक्स आदि) के प्रकोप की जांच करने के लिए
7. कई बीमारियों का पता वध पूर्व परीक्षण के दौरान नहीं किया जा सकता उनमें, वध पश्चात परीक्षण आवश्यक है
8. नियमित रूप से एक निश्चित क्षेत्र में पाए जाने वाले रोग क्षेत्र की पहचान करने के लिए
9. पौष्टिक मांस का उत्पादन करके मांस निर्यात की सुविधा के लिए
10. नकारा लोथों का एवं अंगो का उचित निपटान सुनिश्चित करने के लिए

वध पश्चात परीक्षण (PMI) के लिए आवश्यक सुविधाएं

1. **स्थान** सभी अंगों को शव के हिस्सों के साथ वध पश्चात परीक्षण के लिए रखा जाना चाहिए। वध पश्चात परीक्षण वधशाला में अंगों और संबंधित जानवर के सिर एक टेबल, ऑफल कन्वेयर या बेल्ट पर किया जाना चाहिए। ड्रेसिंग पूरा होने के बाद जितना जल्दी हो सके परीक्षण करना चाहिए, क्योंकि बाद में लसिका गांठों को खोजना और जांचना मुश्किल हो सकता है।
2. **प्रकाश और पानी** किसी भी असामान्य या रोगग्रस्त स्थिति का पता लगाने के लिए पर्याप्त प्रकाश आवश्यक है। प्रत्येक निरीक्षण बिंदु को अच्छी तरह से 0.9 मीटर के स्तर पर 540 लक्स या 50 फुट कैंडल की तीव्रता वाली रोशनी चाहिए। निरीक्षण बिंदु पर गर्म और ठंडे पानी की लगातार आपूर्ति आवश्यक है।
3. **व्यक्ति** एक पशुचिकित्सक और रिकॉर्डिंग के लिए एक निरीक्षक द्वारा सहायता प्रदान की जा सकती है। यह आवश्यक है कि हर एक घंटे के परीक्षण के बाद, कुशल कार्य के लिए निरीक्षकों के लिए छोटे अंतराल की आवश्यकता होती है। एक मांस निरीक्षक एक बूचड़खाने में 75 मवेशियों या 250 बछड़ों या 200 सूअरों या 400 भेड़ प्रति दिन (8 घंटे) की कुशलता से जांच कर सकता है।
4. **सुरक्षात्मक कपड़े** आरामदायक एप्रन, हेलमेट / सिर गियर, मुखौटा, पैर गियर आदि
5. **उपकरण** चाकू, कैंची, आरी, क्लीवर, संदंश आदि।
6. **हाथ धोने की सुविधा** हाथ धोने के लिए पानी तरल साबुन उपलब्ध होना चाहिए
7. **कंटेनर** पोस्टमॉर्टम निरीक्षण के दौरान दो प्रकार के कंटेनरों की आवश्यकता होती है। एक नकारा भागों के लिए और दूसरा पूर्ण नकारा शवों के लिए। इन कंटेनरों को लीक–प्रूफ और ठीक से चिह्नित किया जाना चाहिए। सभी नकारा हिस्सों को ठीक से निपटाया जाना चाहिए।
8. **शव की पहचान और ऑफल के लिए साधन** क्लिप, टैग, टाई, स्टिकिंग इंक आदि। एसिटिक एसिड में 1–2% फूचसीन युक्त घोल का उपयोग किया जाता है।

पोस्टमॉर्टम निरीक्षण के सामान्य सिद्धांत

पशुओं के विभिन्न रोगों की जानकारी एवं मांस की गुणवत्ता निर्धारित करने के लिए वध पश्चात निरीक्षण आवश्यक है।

1. संबंधित पशु के शव और अंगों की पहचान।
2. निरीक्षण, स्पर्श परीक्षण, चीरा और महक तकनीक।
3. घावों को तीव्र या जीर्ण में वर्गीकृत करें।
4. स्थिति स्थानीयकृत या सामान्यीकृत है इसका अंदाज लगाना ।
5. वधपूर्व और पोस्टमॉर्टम निष्कर्षों की सभी टिप्पणियों को सहसंबंधित करें।
6. नैदानिक सहायता के लिए प्रयोगशाला में नमूने भेजें।

पोस्टमार्टम निरीक्षण प्रक्रिया

दूषित प्रदार्थों से बचने के लिए पोस्टमॉर्टम निरीक्षण व्यवस्थित और स्वच्छ तरीके से किया जाना चाहिए। प्रक्रिया में आम तौर पर निम्नलिखित चरण शामिल होते हैं।

1. **सकल दृश्य परीक्षा** लोथ एवं विभिन्न अंगो का सावधानीपूर्वक परीक्षण करना जरुरी है।
2. **ऊतकों और अंगों को महसूस करना** अंगों को महसूस करने से असामान्यताओं का पता लगाने में मदद मिलेगी।
3. **चीरा लगाना** जहां भी आवश्यक हो सिस्ट्स, कीड़ा, और गहरे घावों को देखने के लिए चीरा लगाया जा सकता है। शव और अंगों को इस तरह से चीरा जाना चाहिए कि यह बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं करे।
4. **निरीक्षक की गंध और स्वाद का उपयोग** निरीक्षक को संवेदी मूल्यांकन कर, असामान्य गंध, गहरे फोड़े आदि जैसी असामान्य गंध का पता लगाने के लिए अपनी गंध की भावना का उपयोग करके परीक्षण करना चाहिए।
5. **प्रयोगशाला परीक्षण** रोग या किसी अन्य असामान्य स्थिति की पुष्टि के लिए, प्रयोगशाला परीक्षणों के लिए नमूने एकत्र किए जाने चाहिए।
6. जब सुविधा उपलब्ध हो तो ऑफ़ल या शवों को आगे की परीक्षा/परीक्षणों के लिए रखा जा सकता है, लेकिन ऐसे हिस्से या शव को आगे की परीक्षा के लिए लेबल किया जाना चाहिए।

बूचड़खाने में आमतौर पर तीन मुख्य निरीक्षण बिंदु होते हैं:

1. सिर
2. अंग
3. लोथ

सिर जीभ की सतह, तालू या मुंह की छत, गले की लसिका गांठों (रेट्रोफैरींजियल, सबमैक्सिलरी और पैरोटिड) की जांच की जाएगी। गाल की मांसपेशियों का निरीक्षण दोनों तरफ से किया जाएगा।

अंग सभी अंगों का निरीक्षण किया जाना चाहिए क्योंकि वे शव से हटाए जाते हैं। हर अंग और संबंधित लिम्फ नोड्स की जांच की जानी चाहिए। किसी भी असामान्यता के मामले में, अंगों को सावधानी से निकाला जाता है कि वे अन्य भागों और अंगों को दूषित न करें।

लोथ हर लोथ की जांच होनी चाहिए

1. **पोषण की स्थिति** स्वस्थ पशुओं की मांसपेशियों में पानी प्रोटीन अनुपात 4:1 होता है, जबकि दुर्बल शवों का अनुपात अधिक होता है।
2. **चोट / घाव के निशान**
3. **स्थानीयकृत या सामान्यीकृत सूजन**– हाइड्रोथोरैक्स, एसाइटिस
4. **रक्तस्राव** वध पश्चात ज्यादा से ज्यादा खून जानवर के शरीर के बाहर निकलना जरुरी होता है, अगर खून नहीं निकला तो पसलियों के बीच की नसों में खून जमा होता है और यह आसानी से नजर आता है।
5. हड्डियों या मांस की सूजन या विकृति
6. असामान्य गंध
7. सीरस झिल्ली (फेफड़े और पेरिटोनियम) का निरीक्षण किया जाना चाहिए और किसी भी मामले में निरीक्षक को पूर्व सूचना के बिना हटाया नहीं जाना चाहिए।
8. सिस्ट (सिस्टिसरकस बोविस, और सिस्टिसरकस सेलुलोसे) का पता लगाने के लिए कंधे के पास और प्यूबिक बोन के पास के मांसल भाग में चीरा लगाया जाता है।
9. जानवरों का आयु और लिंग रिकॉर्ड से निर्धारित किया जाता है। लसिका गांठों की स्थिति, आकार, और रंग के लिए देखें। यदि आवश्यक हो तो लसिका गांठों को खोलकर परीक्षण किया जाना चाहिए।

तालिका 1. पोस्टमार्टम निरीक्षण के दौरान निम्न लसिका गांठों की जांच की जानी है।

अ.नं.	अंग / भाग	लसिका गांठें
1	सिर	पैरोटिड, सबमैक्सिलरी और रेट्रोफेरिंजियल
2	फेफड़े	ब्रोन्कियल, मीडियास्टिनल
3	दिल	मीडियास्टिनल
4	यकृत	पोर्टल, हिपेटिक
5	पेट और आंत	गैस्ट्रिक और मेसेन्टेरिक
6	गुर्दे	रीनल
7	प्लीहा	स्प्लेनिक
8	गर्भाशय	इलियाक और रीनल
9	थन	सुप्रामेमोरी
10	वृक्क	सतही इन्गुइनल
11	शव	प्रीस्कॉपुलर, पोपलिटल, रीनल, सर्वाइकल, इंटरकॉस्टल, जिफाइड, प्रीपेक्टोरल, इलिअक

पोस्टमार्टम निरीक्षण के निर्णय निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किए गए हैं:–

1. मानव उपभोग के लिए उपयुक्तता के रूप में स्वीकृत
2. मानव उपभोग के लिए पूरी तरह से अयोग्य
3. आंशिक रूप से अलग करना अन्यथा पूर्ण निस्तारण, मानव उपभोग के लिए अयोग्य
4. मानव उपभोग के लिए सशर्त रूप से अनुमोदित
5. सामान्य से मामूली विचलन दिखाने वाला मांस, लेकिन मानव उपभोग के लिए योग्य
6. सीमित क्षेत्रों में वितरण के साथ, मानव उपभोग के लिए उपयुक्त के रूप में स्वीकृत

प्राकृतिक मौत के कारण जानवर के लोथ को पूरी तरह से फेंकने की आवश्यकता होती है, इस प्रकार के शवों को अपूर्ण रक्तस्राव के कारण फूली हुई रक्त वाहिकाएं, कंजेस्टेड यकृत और फेफड़े, वसा का हरा रंग दिखाई देता है।

निम्नलिखित रोगों या स्थितियों में सभी अंग और लोथ को फेंकने की सिफारिश की जाती है

एक्टिनोबैसिलोसिस (सामान्यीकृत), एंथ्रेक्स, लिम्फैडेनाइटिस, सिस्टिसर्कस सेलुलोसा, गैंग्रीन (नम), प्रणालीगत परिवर्तनों के साथ अपूर्ण रक्तस्राव, स्तनशोथ (एक्यूट सेप्टिक), मेट्राइटिस (एक्यूट सेप्टिक), प्लूरिसी (तीव्र, सेप्टिक), सार्कोसिस्टोसिस (सामान्यीकृत), टिटनेस, टॉक्सेमिया, और यूरेमिया

आजकल, स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ता स्वच्छ वातावरण में स्वस्थ पशुओं से उत्पादित मांस को प्राथमिकता दे रहे हैं। स्वच्छ मांस में गुणवत्ता, कम सूक्ष्मजीव संख्या रहती है, मांस निर्यात को बढ़ावा मिलता है, उपभोक्ताओं में विश्वास पैदा होता है एवं बीमारी का प्रकोप रुकता है। पशुओं का वध पश्चात निरीक्षण स्वच्छ मांस उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानव के लिए पौष्टिक, सुरक्षित और स्वस्थ मांस का उत्पादन प्रदान करता है। इस तरह वध पश्चात लोथ परिक्षण स्वच्छ, गुणवत्ता पूर्ण मांस उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हिंदी जैसी सरल भाषा दूसरी नहीं है।

मौलाना हसरत मोहानी

संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियां

नवीन कुमार यादव

केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर में हिन्दी पखवाड़ा समारोह का आयोजन 14 सितम्बर 2020 से 28 सितम्बर 2020 तक किया गया। दिनांक 14 सितम्बर 2020 को उद्घाटन समारोह कार्यक्रम की अध्यक्षता संस्थान के कार्यकारी निदेशक डॉ. राघवेन्द्र सिंह ने की। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. सुधीर सोनी, ओएसडी, मीड़िया, निर्वाचन विभाग राज. सरकार उपस्थित रहे। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. राघवेन्द्र सिंह ने कहा कि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य सृजन एवं उपयोग किये जाने की आवश्यकता है। मुख्य अतिथि डॉ. सुधीर सोनी ने कहा कि हिंदी एक वैज्ञानिक एवं समृद्ध भाषा है तथा डिजीटल युग में हिंदी का प्रचार–प्रसार वर्तमान समय की आवश्यकता है। श्री नवीन कुमार यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा) ने माननीय गृहमंत्री जी, भारत सरकार एवं केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री जी के संदेशों का पाठन किया। साथ ही सचिव डेयर एवं महानिदेशक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के हिंदी दिवस के अवसर पर जारी विडियो संदेश का भी प्रदर्शन किया गया। इस अवसर पर संस्थान की राजभाषा पत्रिका ''अविपुंज'' के तेरहवें अंक का विमोचन किया गया। डॉ. अरूण कुमार, विभागाध्यक्ष, पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग एवं डॉ. आर्तबंधु साहू, विभागाध्यक्ष, पशु पोषण प्रभाग ने भी अपने विचार व्यक्त किये। धन्यवाद ज्ञापन श्री नवीन कुमार यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा) द्वारा किया गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अर्पिता महापात्र, वैज्ञानिक द्वारा किया गया।

केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर में हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह का आयोजन दिनांक 28 सितम्बर 2020 को किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता संस्थान के कार्यकारी निदेशक डॉ. राघवेन्द्र सिंह ने की। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. डी.डी. ओझा, सेवानिवृत्त वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रख्यात लेखक उपस्थित रहे। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. राघवेन्द्र सिंह ने कहा कि हिन्दी एक सर्वमान्य एवं जन–जन की भाषा है। यह पूरे देश को जोड़े रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस अवसर पर डॉ. डी.डी. ओझा ने कहा कि हिंदी एक वैज्ञानिक एवं समृद्ध भाषा है तथा डिजीटल युग में हिंदी का प्रचार–प्रसार वर्तमान समय की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक लेखन को हिंदी

भाषा के माध्यम से ही जनोपयोगी बनाया जा सकता है। मुख्य प्रशासनिक अधिकारी श्री सुरेश कुमार ने हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित कार्यक्रम के बारे में विस्तार से बताया जिसमें अंताक्षरी, टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, निबंध, श्रुतलेख, हिंदी शोधपत्र एवं पोस्टर प्रतियोगिता, प्रश्न मंच, आशुभाषण, स्वरचित कविता सहित कुल 10 प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रमाण–पत्र प्रदान किये गये। श्री नवीन कुमार यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा) ने कहा कि संस्थान के सभी अधिकारियों/कर्मचारियों ने हिंदी पखवाड़ा के दौरान आयोजित सभी प्रतियोगिताओं में बढ़–चढ़कर भाग लिया। इस अवसर पर संस्थान के 'वार्षिक प्रतिवेदन 2019' का विमोचन किया गया। डॉ. अरूण कुमार विभागाध्यक्ष, पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग एवं डॉ. आर्तबंधु साहू, विभागाध्यक्ष, पशु पोषण प्रभाग ने भी अपने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम का संचालन श्री नवीन कुमार यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा) द्वारा किया गया।

हिंदी पखवाड़ा आयोजन के दौरान संस्थान के सभी कार्मिकों ने सभी प्रतियोगिताओं में बढ़–चढ़कर भाग लिया तथा इस दौरान संस्थान में राजभाषा कार्य में लगभग 13 प्रतिशत वृद्धि हुई। संपूर्ण आयोजन के दौरान कोविड़–19 संबंधी गाईडलाइन की पालन की गई।

मरू क्षेत्रीय परिसर, बीकानेर

भारत सरकार द्वारा जारी कोविड–19 की रोकथाम के लिए दिए गए दिशा–निर्देशों की अनुपालना करते हुए दिनांक 14 – 21 सितम्बर 2020 तक मरू क्षेत्रीय परिसर, भा.कृ.अनु.प–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान बीकानेर में हिंदी सप्ताह मनाया गया। हिन्दी सप्ताह उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. राजेश कुमार सांवल निदेशक, भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर, एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. शालिनी मूलचंदानी, प्रोफेसर और प्रभागाध्यक्ष डूंगर महाविधालय, बीकानेर उपस्थित रहे। डॉ. राजेश कुमार सांवल ने वैज्ञानिक कार्यो में हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया। मुख्य अतिथि महोदय ने मरू क्षेत्रीय परिसर, बीकानेर द्वारा विभिन्न वैज्ञानिक एवं कार्यालय गतिविधियों में हिन्दी के उपयोग की सराहना की। इसके साथ ही विशिष्ट अतिथि डॉ शालिनी मूलचंदानी ने हिन्दी के सरलीकरण पर जोर देते हुए इसे जन–जन की भाषा बनाने पर जोर दिया। केन्द्र के प्रभागाध्यक्ष, डॉ. एच.के. नरूला ने कार्यालय में हिन्दी में होने वाली गतिविधियो के बारे में जानकारी दी तथा हिंदी भाषा के महत्व पर प्रकाश डाला। हिंदी सप्ताह के दौरान स्वरचित कविता

पाठ, हिन्दी निबंध प्रतियोगिता, श्रुतिलेखन, हिन्दी में सामान्य ज्ञान, हिन्दी टिप्पण प्रतियोगिता तथा पोस्टर प्रदर्शन प्रतियोगिता आयोजित की गयी। इन सभी प्रतियोगिताओं में प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान अर्जित करने वाले प्रतिभागियों को पुरस्कार वितरित किए गए। हिन्दी सप्ताह समारोह का समापन, मुख्य अतिथि, डॉ प्यारे लाल सरोज, निदेशक – भा.कृ.अनु. प.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर की गरिमामयी उपस्थिति में सम्पन हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि महोदय ने हिन्दी भाषा के संवैधानिक विकास यात्रा पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी भाषा के त्रिआयामी महत्व को समझाया तथा साथ ही, हिन्दी भाषा की सुग्राह्यता सरलता बनाए रखते हुए इसे जन–जन की सम्पर्क भाषा बनाने पर जोर दिया। कार्यक्रम के अंत में डॉ. चंदन प्रकाश, वैज्ञानिक एवं प्रभारी, राजभाषा ने सभी का धन्यवाद ज्ञापित किया।

उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रीय केंद्र गड़सा

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के अंतर्गत केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान के उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रीय केंद्र गडसा द्वारा दिनांक 14.09.2020 से 28.09.2020 तक हिंदी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। हिन्दी पखवाड़े का उद्घाटन दिनांक 14.09.2020 को दीप प्रज्ज्वलन कर किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री नीरज श्रीवास्तव, विमानपत्तन निदेशक, कुल्लू–मनाली हवाई अड्डा, हिमाचल प्रदेश ने राजभाषा हिन्दी में काम–काज करने एवं राजभाषा को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया। इस अवसर पर उन्होंने राजभाषा अधिनियमों की जानकारी देते हुये उनकी अनुपालना का आह्वान किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए केंद्र के अध्यक्ष एवं प्रधान वैज्ञानिक डॉ ओमहरी चतुर्वेदी ने कहा कि हमारे देश के संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। हिन्दी हमारी संस्कृति एवं समाज को सुदृढ़ बनाकर संगठित करती है। हिन्दी हमारी संस्कृति एवं जीवन शैली तथा लगभग 77 प्रतिशत देशवासियों की मातृभाषा हिन्दी है जो हिन्दी में लिखते, पढते, बोलते एवं समझते हैं। इस कार्यक्रम में श्री मनीष बडोला, सहायक प्रशासनिक अधिकारी ने हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित की जाने वाली विभिन्न प्रतियोगिताओं जैसे प्रश्नमंच, श्रुतिलेख, निबंध लेखन इत्यादि के बारे में जानकारी दी। इस कार्यक्रम में केंद्र के सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। केंद्र के वैज्ञानिक, डॉ अब्दुल रहीम ने सभी अतिथियों एवं आगुन्तकों का धन्यवाद ज्ञापित किया।

दक्षिण क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मन्नवनूर

दक्षिण क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मन्नवनूर में हिंदी पखवाड़ा का आयोजन दिनांक 14 से 28 सितम्बर 2020 तक किया गया। पखवाड़ा समापन दिनांक 28 सितम्बर 2020 को किया गया। इस अवसर पर केन्द्र के नियमित एवं संविदा कर्मचारी उपस्थित रहे। हिंदी पखवाड़ा के दौरान सभी अधिकारियों व कर्मचारियों ने प्रतिदिन हिंदी में वार्तालाप एवं चर्चा की। कोविड़–19 गाईडलाइन की पालना करते हुये केन्द्र द्वारा सीमित संख्या में गतिविधियां आयोजित की गयीं। बैठक के दौरान केन्द्र के कर्मचारियों द्वारा देश के विभिन्न प्रांतों के नागरिकों को एकता के सूत्र में जोड़ने में हिंदी के महत्व पर चर्चा की गयी। साथ ही सभी कार्मिकों को फार्म पर एवं दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले तमिल शब्दों एवं वाक्यांशों के समानार्थी हिंदी शब्दों से अवगत कराया। साथ ही सभी कार्मिकों से अधिक से अधिक हिंदी का प्रयोग करने की अपील की गयी।

हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर

नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिए जाएंगे।

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर
आजादी के अमृत महोत्सव के तहत
अनुसूचित जाति उपयोजना एवं फार्मर फर्स्ट परियोजना के अंतर्गत
किसान - वैज्ञानिक संगोष्ठी
31 जुलाई 2021
का हार्दिक स्वागत है

हिन्दी पखवाड़ा समारोह
(14-28 सितम्बर 2021)
कृषक-वैज्ञानिक संवाद
दिनांक: 28 सितम्बर 2021
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर (राजस्थान)
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर
ICAR
CSWRI
AVIKANAGAR

आज़ादी का अमृत महोत्सव

DIAMOND JUBILEE 1962 2021 CSWRI

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान

अविकानगर - 304 501 (राजस्थान)

दूरभाष : 91-1437-225212, 220162, फैक्स : 91-1437-220163

ईमेल : cswriavikanagar@yahoo.com, वेब साईट : http :// www.cswri.res.in